वास्तुशास्त्र
कनिष्ठ सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 2.5

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

वास्तुशास्त्र कनिष्ठ सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखक

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा, ज्योतिषाचार्य

एम०ए०, एम० फिल०, पी०एचडी०(शैक्षिक सहायक)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग एवं टङ्कण : डॉ. अभय कुमार पाण्डेय

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN :

मूल्य :

संस्करण :2024

प्रकाशित प्रति PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

वास्तुशास्त्र कनिष्ठ सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

प्राक्कथन

वेद सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान के स्रोत है। वास्तुशास्त्र का उद्गम वेदों से हुआ तथा पुराणों के समय पुष्पित – पल्लवित एवं विकास हुआ और वैदिक ऋषि-मुनियों की शोधों के फलस्वरूप वर्तमान में चौसठ विद्याओं में से वह एक विद्या वास्तुशास्त्र मनुष्यों का उपकार कर रहा है।

हे राजा! आप परस्पर द्रोह न करते हुए उत्तम स्थायी सहस्त्रों स्तम्भों वाले गृह में रहें। यथा-

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्त्रस्थूण आसाते॥ (ऋ.2.41.5)

अथर्ववेद में वातानुकूलित गृह का उल्लेख है

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि।

शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥ (अ.वे.6.106.3)

विद्वान शिल्पियों द्वारा मापित तथा निर्मित एवं ब्राह्मण पुरोहित के द्वारा आधार शिला रखी हुई शाला को बचाने वाले इन्द्र एवं अग्नि रक्षा करें और सोम औषधि प्रधान गृह की रक्षा कीजिए।

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम्।

इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ (अ.वे.9.3.19)

प्रत्येक मनुष्य का शरीर प्रकृति के पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँच तत्त्वों से बना है, उसी प्रकार वास्त्रशास्त्र भी उन्हीं पाँच तत्त्वों का विधान है। जैसा कि तुलसीदास जी ने कहा है

छिति जल पावक गगन समीरा।

पञ्च रचित अति अधम सरीरा।।(रामचरितमानस चौ.1.4.11)

पृथ्वी, जल, तेज, वायु,आकाश। इन पञ्च महाभूतों से ही समस्त सृष्टि की संरचना हुई है। हमारे वैदिक ऋषियों ने पंचमहाभूतों के साथ प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अपार्टमेंट (बहुमंजिला गृह) फ्लैट, बंग्ला, दुर्ग, सरकारी आवास, गृह, अतिथिशाला, सभागार नगर और लोककल्याणादि हेतु यज्ञादि के लिए नियमों, विधियों एवं प्रविधियों का निर्माण कर वास्तुविन्यास किया है।

अग्नि-भूमि-नभस्तोयवायवः क्रमतो द्विज।

भौमादीनां ग्रहाणां तु तत्त्वान्येतानि वै क्रमात्।।(बृ.पा.हो.ग्र. स्व.अ.21)

भवन की साज- सज्जा और ऊँचाई के विषय मे अथर्ववेद में कहा गया है कि सुन्दरता हेतु शाला के अन्दर जो छिक्के लगाएँ हैं, उन आपके छिक्कों को सुदृढ ग्रथित करते हैं, मान की रक्षा करने वाली शाला! ऊँची निर्मित हुई वह हमारे शरीरों के लिए कल्याणकारिणी हो।

यानि तेऽन्तः शिक्या न्याबेधू रण्याय कम्।

प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ॥ (अथर्व.9.3.6)

अथर्ववेद में गृह कक्षा विन्यास का उल्लेख प्राप्त होता है पूजागृह, रसोईगृह, स्त्री गृह, पुरुषगृह, अतिथिगृह एवं गवादि गृह आदि विन्यासों की पृथक-पृथक व्यवस्था होनी चाहिए।

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः।

सदो देवानामसि देवि शाले ॥ (अथर्व.9.3.7)

अथर्ववेद में गृह के महत्त्व का वर्णन है कि हे सम्मान की रक्षा करनेवाली शाले! जो तुझमें निवास करता है और जिस गृहपति के द्वारा मानपूर्वक बनाई गई है, वे सब गृह के सदस्य पूर्ण वृद्धावस्था का व्यापन करनेवाले होते हुए जीवन यावन करें। **यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम्।**

उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥ (अथर्व.9.3.9)

अनेक ग्रन्थों का सार ग्रहण करते हुए इस गन्थ का निर्माण किया है अतः वास्तुशास्त्र कनिष्ठ सहायक का यह ग्रन्थ छात्रों के लिए वास्तुशास्त्र प्रवेश, भारत मिशन, वास्तुशास्त्र का उद्भव, वास्तुपुरुष का विकास एवं उपयोगिता, वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक एवं ग्रन्थ, भूखण्डविचार, भूमिपरीक्षण एवं भूमिशोधनप्रकार, दिग्विचार, दिशानुसार शुभाशुभ वृक्ष ज्ञान, शिलान्यास, वास्तुभेदों के ज्ञान में सुगम तथा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। लेखक पाठ्यपुस्तक के त्रुटि सुधार हेतु प्रेषित सिद्धान्त एवं प्रायोगिक आलोचनात्मक समस्त सुझावों के लिए आपका कृतज्ञ होगा।

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा

विषयानुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ संख्या
इकाई 1: कौशल भारत मिशन एवं ज्योतिष शास्त्र कनिष्ठ सहायक की भूमिका का परिचय		7-11
1.1	राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन	7
1.2	राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन के उद्देश्य	7
1.3	कौशल विकास और उद्यमशीलता मंत्रालय	7
1.4	मन्त्रालय के उद्देश्य	8
1.5	प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीटी)	8
1.6	प्रशिक्षण महानिदेशालय मुख्य कार्य	8-9
1.7	राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीईटी)	9
1.8	राष्ट्रीय कौशल विकास के प्रभाव	9.10
1.9	वास्तुशास्त्र कनिष्ठ सहायक की भूमिका का परिचय	10-11
इकाई-2 (वास्तुशास्त्र का उद्भव और विकास)		**12-22**
2.1	वास्तुशास्त्र का उद्भव	12-15
2.2	वेदांगों में ज्योतिषशास्त्र	16-17
2.3	वास्तुशास्त्र की परिभाषा	17
2.4	वास्तु के पञ्च महाभूत	17
2.5	वास्तुपुरुषस्वरूप	18
2.6	वास्तुपुरुष का विकास एवं उपयोगिता	19-21
2.7	वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक एवं ग्रन्थ	21

इकाई -3 (भूखण्डविचार)	**23-32**
3.1 प्रशस्तभूमि	23-24
3.2 भूमिदोष	24
3.3 भूमिदोष के फल	24
3.4 गजपृष्ठभूमि लक्षण	24
3.5 गजपृष्ठ भूमि के फल	24
3.6 कूर्मपृष्ठ भूमिलक्षण	24
3.7 कूर्मपृष्ठ भूमि के फल	25
3.8 दैत्यपृष्ठ भूमिलक्षण	25
3.9 दैत्यपृष्ठ भूमि के फल	25
3.10 नागपृष्ठ भूमिलक्षण	25
3.11 नागपृष्ठ भूमिलक्षण	25
3.12 वासयोग्यभूमि	25-26
3.13 भभूखण्ड की आकृतियाँ	26-27
3.14 भूमि के भेद्	27
3.15 भूमि के वर्ण	27
3.16 भूमिचयन	27
3.17 भूमिपरीक्षण एवं भूमिशोधनप्रकार	28-30
3.18 शल्यशोधन	30-31
3.19 तडागादि खनन योग	31
3.20 जीवितादिभूमिज्ञान एवं फल	31-32
3.21 गृहनिर्माण एवं गृहजीर्णोद्धार में मास विचार	32

3.22 ईंटस्थापन ज्ञान

इकाई -4 (दिग्विचार) **33-41**

4.1 दिक्साधन 33-34

4.2 दिशाधिपति

4.3. दिशाओं के स्वामी ग्रह 35

4.4. ग्रामवास 35-36

4.5 काकिणीविचार 36-37

4.6 दिशानुसार शुभाशुभ वृक्ष ज्ञान 37

4.7. भूमि का ध्रुवभूमि विचार 38

4.8 ढलानभूमि के फल 38-41

इकाई- 5 (शिलान्यास) **42-44**

5.1 भूमिपूजन

5.2. शिलान्यास हेतु वस्तुएँ 44

5.3. भूमिपूजाविधि 44

5.4 भूमि पूजन मुहूर्त विचार 45-46

5.5 शिलान्यास विधि 46-52

5.6 शिलान्यास हेतु सामग्री 52

इकाई-6 (वास्तुभेदों का परिचय)

6.1 आवासीयवास्तु 53-61

6.2 व्यावसायिकवास्तु 61

6.3 देवालयवास्तु 62

इकाई-7 (गृहारम्भ ज्ञान)

7.1 पञ्चाङ्गज्ञान 62-89

इकाई- 8 (वास्तुशास्त्रीय सामान्य मत) **90-96**

8.1 विश्वकर्मा वास्तु 90-93

8.2 वराहमिहिर वास्तु 93

8.3 मयवास्तु 93-94

8.4 मण्डन वास्तु 94

8.5 भोज वास्तु 95-96

इकाई 1 : कौशल भारत मिशन एवं वास्तुशास्त्र कनिष्ठ सहायक की भूमिका का परिचय

1.1. **राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन**- 15 जुलाई, 2015 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का शुभारंभ किया। कुशल भारत, भारत सरकार की एक पहल है जो कौशल प्रशिक्षण के द्वारा देश के युवाओं का व्यक्तिगत विकास कर उनको सशक्त उद्यमी और अधिक उद्यमशील बनाकर उनका तथा देश के आर्थिक विकास को उन्नत करके कुशल भारत और समृद्ध भारत बनाने के लिए शुरू किया गया है। राष्ट्रीय कौशल मिशन के अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी हैं।

भारत की 65% युवा आवादी को कौशल विकास के माध्यम से उद्यमशील बनाकर देश को एक वैश्विक शक्ति बना सकते हैं। अतः कुशल भारत सम्पूर्ण देश के 40 क्षेत्रों में पाठ्यक्रम प्रदान करता है जो राष्ट्रीय कौशल अर्हता मानक के तहत उद्योग और सरकार दोनों द्वारा मान्यता प्राप्त मानकों से जुड़े हैं। यह पाठ्यक्रम एक शिक्षार्थी को कार्य के व्यावहारिक समन्वय के साथ-साथ उसको तकनीकी रूप से उद्यम करने में सक्षम बनाता है।

1.2. **राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन के उद्देश्य**

- कौशल विकास का उद्देश्य युवाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण के द्वारा आजीविका प्रदान करना है।
- यह कौशल औपचारिक शिक्षा के साथ कौशल प्रशिक्षण के द्वारा उद्यमिता क्षमता में गुणवत्तापूर्ण परिणाम लाता है।
- कौशल विकास राष्ट्रीय मानकों के तहत प्रौद्योगिकी के माध्यम से कार्य क्षमता को बढ़ाना है।
- युवाओं का व्यक्तिगत विकास के साथ- साथ देश की आर्थिक वृद्धि को शिखर पर ले जाना है।

1.3. **कौशल विकास और उद्यमशीलता मंत्रालय-**

कौशल विकास के द्वारा युवाओं की आजीविका क्षमता को बढ़ाने हेतु केन्द्र सरकार ने कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय (एमएसडीई) का 26 मई 2014 को गठन किया। यह मंत्रालय कौशल विकास के समस्त प्रयासों का समन्वय करने, कुशल जनशक्ति की मांग और आपूर्ति के बीच के अंतर को दूर करने, व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण ढांचे का निर्माण करने, कौशल उन्नयन करने, न

केवल मौजूदा रोजगारों हेतु, बल्कि सृजित की जाने वाली नौकरियों के लिए भी नए-नए कौशलों का निर्माण करने के लिए अहर्निशम प्रयासरत है।

1.4. **मन्त्रालय का उद्देश्य-** 'कुशल भारत' के दृष्टिकोण के लक्ष्यों को प्राप्त करने और उच्च मानकों के साथ बड़े पैमाने पर कुशल बनाना है। इन पहलों में इसकी सहायता करने के लिए निम्न संस्थाएँ कार्यरत हैं - प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीटी), राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीवीईटी), राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी), राष्ट्रीय कौशल विकास निधि (एनएसडीएफ़) और 37 क्षेत्र कौशल परिषदें (एसएससी) के साथ-साथ 33 राष्ट्रीय कौशल प्रशिक्षण संस्थान [एनएसटीआई/एनएसटीआई (महिला)], डीजीटी के अंतर्गत लगभग 15000 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आईटीआई) और एनएसडीसी के साथ 187 प्रशिक्षण भागीदार पंजीकृत हैं। मंत्रालय ने कौशल विकास केंद्रों, विश्वविद्यालयों और इस क्षेत्र के अन्य गठबन्धनों के साथ कार्य कर रहा है। इनके अतिरिक्त, सम्बन्धित केंद्रीय मन्त्रालयों, राज्य सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, उद्योग एवं गैर-सरकारी संगठनों के साथ कौशल विकास को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कार्य कर रहा है तथा देश के कार्यबल को पुन: सुदृढ और सक्रिय कर रहे हैं; तथा युवाओं को घरेलु उद्यमों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय रोजगार और विकास के हेतु तैयार कर रहें हैं।

1.5. **प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीटी)-** व्यावसायिक प्रशिक्षण, जिसमें महिलाओं का व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित कार्यक्रमों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर विकास तथा समन्वय हेतु कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मन्त्रालय में प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीटी) एक शीर्षस्थ संगठन है। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान राज्य सरकारों या संघराज्य क्षेत्रों के प्रशासनों के प्रशासनिक तथा वित्तीय नियन्त्रणाधीन हैं। डीजीटी भी अपने सीधे नियन्त्रण में क्षेत्रीय संस्थानों के माध्यम से कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण योजनाएँ संचालित करता है। राष्ट्रीय स्तर पर इन कार्यक्रमों का विस्तार करने की जिम्मेदारी विशेषतः सामान्य नीतियों, सामान्य मानक तथा प्रक्रियाओं, अनुदेशकों के प्रशिक्षण तथा व्यवसाय परीक्षण सम्बन्धित क्षेत्र में लेकिन औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की दैनन्दिन व्यवस्था की जिम्मेदारी राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासनों की है।

1.6. **प्रशिक्षण महानिदेशालय मुख्य कार्य-**

- व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु समग्र नीतियाँ, मानदण्ड तथा मानक तैयार करना।

- शिल्पकारों तथा शिल्प अनुदेशकों के मामले में प्रशिक्षण के प्रशिक्षण सुविधाओं में विविधता लाना, उन्हें अद्यतन करना तथा उनका विस्तार करना।
- विशेष रूप से स्थापित प्रशिक्षण संस्थानों पर विशिष्ट प्रशिक्षण तथा अनुसन्धान की व्यवस्था तथा आयोजन करना।
- शिक्षुता अधिनियम 1961 के अंतर्गत (**शिक्षुता संशोधन नियम** 2019) शिक्षुओं के प्रशिक्षण का पैमाना लागू करना उसका नियमन तथा विस्तार करना
- महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना
- व्यावसायिक मार्गदर्शन तथा रोजगार परामर्श प्रदान करना।
- अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों तथा दिव्यांगों की वेतन रोजगार तथा स्व रोजगार हेतु सामर्थ्य बढ़ाने में सहायता करना।

1.7. राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद(एनसीवीईटी) -

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना भारत सरकार द्वारा 5 दिसम्बर 2018 को एक नियामक निकाय के रूप में की गई थी। यह 1 अगस्त 2020 से एनसीवीईटी मानकों को स्थापित करने, व्यापक नियमों को विकसित करने और व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल पारिस्थितिकी संस्थाओं, मूल्याङ्कन एजेंसियों और कौशल सूचना प्रदाताओं को मान्यता देता है और उनके कामकाज की निगरानी करता है। इस प्रकार इसका उद्देश्य अत्यधिक कुशल जनशक्ति की उपलब्धता को सुविधाजनक बनाना, रोजगार क्षमता में सुधार करना और भारतीय अर्थव्यवस्था के त्वरित विकास में योगदान देना है।

1..8. राष्ट्रीय कौशल विकास के प्रभाव-

- प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) से अब तक लगभग 1.37 करोड़ लोगों को सक्षम बनाकर नए कुशल भारत के लिए तैयार किया गया है।
- देश में कौशल विकास अब तक 720 से अधिक प्रधानमंत्री कौशल केंद्र स्थापित किए जा चुके हैं। ये शिक्षाशास्त्र एवं प्रौद्योगिकी के लाभ के अत्याधुनिक कौशल केंद्र हैं।

- एमएसडीई, पीएमकेवीवाई के तहत इसके पूर्व शिक्षण मान्यता (आरपीएल) कार्यक्रम के माध्यम से अनौपचारिक साधनों द्वारा प्राप्त कौशल को मान्यता देता है और प्रमाणित करता है, जिससे असंगठित क्षेत्र को संगठित अर्थव्यवस्था में लाना एक बड़ा परिवर्तन है। इस कार्यक्रम के तहत अब तक 50 लाख से अधिक लोग प्रमाणित और औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त कर चुके हैं।
- कुशल भारत देश में सभी कौशल विकास कार्यक्रमों में सामान्य मानदण्डों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदारी लेता है ताकि वे सभी मानकीकृत और एक समान हों। व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण में बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए कुशल भारत के तहत आईटीआई इकोसिस्टम को भी शामिल किया गया है।

कुशल भारत में प्रशिक्षित युवा अब देश लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर की मांगों को भी पूरा करेंगे क्योंकि किसी भी राष्ट्र की सफलता सदैव शिक्षित एवं प्रशिक्षित लोगों पर निर्भर करती है और कुशल भारत इस युवा भारतीयों के लिए आत्मनिर्भर बनने का निश्चित अवसर प्रदान करेगा। जिससे भारत एक कुशल भारत और श्रेष्ठ भारत के रूप में विकसित होगा जहाँ सभी के लिए आजीविका और प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।

1.9 वास्तुशास्त्र कनिष्ठ सहायक की भूमिका का परिचय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का लक्ष्य व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास करना है। देशों को इस समय कुशल एवं सक्षम जनशक्ति की आवश्यकता है। जिस आवश्यकता को इस इकाई योग्यता आधारित पाठ्यक्रम से पूर्ति की जा सकती है। 64 कलाओं में से एक वास्तुशास्त्र कौशल न केवल भारतीय शिल्पकला के सांस्कृतिक आवासादि से सम्बन्धित विभिन्न विषयों, भौतिक तत्त्वों, वासयोग्य भूमि के सिद्धान्तों एवं दैनिक समस्याओं की प्रक्रियाओं और प्रथाओं की मूल समझ प्रदान करने के लिए शुरू किया गया है, बल्कि यह छात्रों के कौशल और व्यावसायिक आवश्यकताओं को भी पूरा करेगा तथा कौशल आधारित शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से रोजगार क्षमता में सुधार भी करेगा।

कनिष्ठ सहायक की भूमिका-

यह स्वास्थ्य, सुख, ऋद्धि, सन्तति और दैनिक जीवन की दृष्टि से आधार पाठ्यक्रम है जहाँ छात्रों को समाज में काम करने का अनुभव मिलेगा। यह वास्तुशास्त्र उन्हें शास्त्रीय और समकालीन पहलुओं की

विशाल और विस्तृत जानकारी देगा। छात्रों को **कनिष्ठ सहायक** के मूल कर्तव्यों को समझने में मदद करने के लिए वास्तु के व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ मूल सिद्धान्तों का ज्ञान कराया जाएगा।

कनिष्ठ सहायक के उद्देश्य-

- इस पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य अन्य विषयों के साथ-साथ कौशल विषय चुनने वाले छात्रों की रोजगार क्षमता और कौशल दक्षता विकसित करना हैं।
- वास्तुशास्त्र लोगों के मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित करेगा।
- समाज को गुणवत्तापूर्ण सेवा प्रदान करने के लिए ज्योतिषी व वास्तुकार प्रशिक्षित करना।
- गृहनिर्माण में प्रभावी समस्याओं तथा खतरों की पहचान करना और उनके प्रबन्धन को समझना।
- वास्तुशास्त्र के सैद्धान्तिक कर्तव्यों को समझना, जिसमें महत्त्वपूर्ण मापदण्डों को लेना और रिकॉर्ड करना, वास्तु इतिहास, गृह की जाँच करना और वास्तुशास्त्र के द्वारा समाज को सुखी- समृद्ध बनाना है।

आजीविका के अवसर -

वास्तुशास्त्र का पाठ्यक्रम छात्रों को लोगों की माँग का विश्लेषण करेगा और समाज में शिक्षार्थियों को अच्छे से भूमि प्रबन्धन करना सिखाएगा। यह पाठ्यक्रम छात्रों को **भूमिचयन, भूमिपरीक्षण एवं भूमिशोधनप्रकार, शल्यशोधन, गृहनिर्माण एवं गृहजीर्णोद्धार, शिलान्यास विधि, शिलान्यास हेतु सामग्री, दशदिक्पाल पूजन, वास्तु पुरुषपूजन, गृहारम्भ, वास्तुशान्ति,** क्षेत्रों में काम करने की अनुमति देगा। यह पाठ्यक्रम छात्रों को उनके **वास्तुकार कैरियर** को प्रभावी ढंग से तैयार करने के विशेष उद्देश्य से तैयार किया गया है।

सक्रिय गतिशीलता-

इस पाठ्यक्रम में भाग लेकर छात्र आगे की शिक्षा को अद्यतन कर सकेंगे, विभिन्न संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों के ज्योतिष, वास्तु विभाग तथा समाज और बिल्डर के लिए सहायक होंगे।

इकाई-2 (वास्तुशास्त्र का उद्भव और विकास)

भगवान् श्रीपति स्तोत्रपरक अपौरुषेय प्रभुसंहिता ऋग्वेदादि चार वेद हैं। वेद हमारी सृष्टि की सनातन ज्ञानवाणी है। वेद से ही ज्ञान और विज्ञान का उद्भव हुआ है। इस सृष्टि रचना से लेकर अद्यावधि जितना भी ज्ञान व विज्ञान इस विश्व में स्थित है उस ज्ञान अथवा विज्ञान के बीज हमें वेदों से ही प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद चारों वेदों के चार चार उपवेद हैं। ऋग्वेद के उपवेद आयुर्वेद से गायन, योग, दर्शन, ज्योतिष-गणित, भौतिकशास्त्र, भूविज्ञान, भूगोल तथा रसायनविज्ञान आदि विद्याओं का उद्भव, यजुर्वेद के धनुर्वेद से सैन्यविज्ञान के साथ-साथ योग, दर्शन, ज्योतिष, भौतिकशास्त्र, भूविज्ञान, भूगोल तथा रसायनविज्ञान आदि विद्याओं का विस्तृत रूप से वर्णन, सामवेद के गान्धर्व वेद से गायन, नृत्य, नाट्यादि विद्याओं का विस्तार पूर्वक प्रायोगिक वर्णन, अथर्ववेद के स्थापत्यवेद से अर्थनीति, दण्डनीति, राजनीति, वाणिज्य, ज्योतिष-वास्तुशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, आभूषणनिर्माण, आयुधनिर्माण, चित्रकला, शिल्पकला का लोकोपकार के लिए प्रायोगिक वर्णन है। चारों वेदों में वास्तुशास्त्र का वर्णन है लेकिन स्थापत्यवेद का तात्पर्य है निवास योग्य स्थापना। वैदिक काल में उद्भूत इस शास्त्र का उत्तर वैदिक काल और पौराणिक काल में पल्लवन हुआ और आज यह वास्तुशास्त्र कल्पवृक्ष के रूप में प्रतिष्ठित होकर विकास की गति पर अग्रसर है।

2.1. वेदों से वास्तुशास्त्र का उद्भव-

महान परमेश्वर के द्वारा (सृष्टि रचना के साथ ही) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नि:श्वास की तरह सहज ही प्रकट हुए थे अर्थात् परमात्मा का नि:श्वास ही वेद है। बृहदारण्यकोपनिषद का वचन है कि- **अस्य महतो भूतस्य निः श्वसितम् एतत् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वाङ्गिरसः (बृहदारण्यकोपनिषत् 2-4-10)** इस विषय में सायणाचार्य अपने वेद भाष्य में लिखते हैं- **यस्य नि:श्वसितं वेदा यो वेदेभ्योरखिलं जगत। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्।**

इस प्रकार वेदों में ब्रह्माण्डीय अन्तरिक्ष का व्याकरण, सृष्टि का वाक्यविन्यास, और एक सच्चे अर्थ में ब्रह्माण्डीय वस्तुओं के सिद्धान्तों को समझें इन सिद्धान्तों का उपयोग वर्तमान सृष्टि को भी बनाने के लिए किया गया था।

बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि वेद ईश्वर की ही सांस हैं और इसी से अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का विकास हुआ। अर्थात् ब्रह्माण्ड से ब्रह्माण्ड का विकास अन्तरिक्ष से विकसित वायु,

वायु से अग्नि का विकास, अग्नि से जल का विकास औऱ जल से पृथ्वी का विकास हुआ। जैसा कि तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है

यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः।वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। (तैत्तिरीयोपनिषद 2.1.1)

जो व्यक्ति सत्ता की हृहय की गुफा में निहित 'उसको' खोज लेता है 'उसके' ही प्राणियों को परम व्योम में 'उसे' प्राप्त कर लेता है, वही समस्त कामनाओं को परितृप्त करता है तथा वही उस विज्ञानमय तथा बोधपूर्ण 'अन्तरात्मा' के साथ 'ब्रह्म' में निवास करता है।

यही है 'आत्मा' 'आत्मतत्त्व'। इसी 'आत्मतत्त्व' से आकाश उत्पन्न हुआ, तथा आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल की उत्पत्ति हुई, जल से पृथ्वी की, पृथ्वी से औषधियों की, औषधियों से अन्न और अन्न से मनुष्य की उत्पत्ति हुई। वास्तव में यह मनुष्य, मानव सत्ता के अन्न रस के, उसके तत्त्व से ही निर्मित है। जिसे हम देख रहे हैं, उसका शिर है, और यह उसका दक्षिण पक्ष है, यह उसका वाम पक्ष है, यह उसका अन्तरात्मा है, यह उसका निम्नांग जिस पर वह स्थिर रूप से प्रतिष्ठित रहता है। जिसके विषय में 'श्रुति' का यह वचन है।

सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्। अथातः संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः। पञ्चस्वधिकरणेषु। अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम्। ता महासंहिता इत्याचक्षते।

अथाधिलोकम्। पृथिवी पूर्वरूपम्। द्यौरुत्तररूपम्। आकाशः सन्धिः। वायुः सन्धानम्। इत्यधिलोकम्।

अथाधिजौतिषम्। अग्निः पूर्वरूपम्। आदित्य उत्तररूपम्। आपः सन्धिः। वैद्युतः सन्धानम्। इत्यधिज्यौतिषम्।

अथाधिविद्यम्। आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या सन्धिः। प्रवचनं सन्धानम्।इत्यधिविद्यम्।

अथाधिप्रजम्। माता पूर्वरूपम्। पितोत्तररूपम्। प्रजा सन्धिः। प्रजननं सन्धानम्। इत्यधिप्रजम्।

अथाध्यात्मम्। अधरा हनुः पूर्वरूपम्। उत्तरा हनुरुत्तररूपम्। वाक् सन्धिः। जिह्वा सन्धानम्।

इत्यध्यात्मम्। इतीमा महासंहिताः।य एवमेता महासंहिता व्याख्याता वेद। सन्धीयते प्रजया पशुभिः।ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्ग्येण लोकेन॥ (तैत्तिरीयोपनिषद 1.3.1)

श्रोत, गृह्य, धर्म एवं शुल्वसूत्र ये चार प्रकार के कल्पसूत्र प्राप्त होते हैं। श्रोतसूत्रों में वेदविहित यागादि के लिए अनुष्ठान विधि का वर्णन है, गृह्मसूत्रों में गृहस्थों के लिए विविध यज्ञों तथा संस्कारों की अनुष्ठानविधि का वर्णन, धर्मसूत्रों में वर्णाचार व आश्रमों के नियमों का वर्णन और शुल्वसूत्र का प्रयोग यज्ञवेदियों के निर्माण के लिए किया जाता था। वस्तुतः यज्ञों का सम्पादन विधिपूर्वक किया जाता था और उन यज्ञों के सम्पादन हेतु यज्ञवेदियों का निर्माण किया जाता था। इन यज्ञवेदियों का निर्माण एक निश्चित माप में किया जाता था। माप के लिए शुल्व का प्रयोग किया जाता था। शुल्वसूत्रों में प्रतिपादित इस मापन क्रम का प्रयोग कालान्तर में भव्य देवप्रासादों तथा राजप्रासादों में भी होने लगा। जिस प्रकार से वैदिक काल में वास्तु का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में पाया जाता है जहाँ ऋषि वास्तुपति भगवान से वेदों की, सुरक्षा, सुख और समृद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। हे वास करने योग्य गृह और राष्ट्र के पालक! गृहपति! वास्तुदेव! आप हम प्रत्येक को समझों व प्रतिज्ञा पूर्वक हमारे प्रति व्यवहार किया करें। हमारे प्रति उत्तम भावों और वर्त्तावों वाला तथा अपने ही गृह के समान प्रेम से वर्त्तने वाला और रोगादि से पीड़ा नहीं देने वाला हो। जो हम आपसे हैं और आपसे याचना करते हैं कि हमारे भृत्य पुत्रादि और गाय, भैंस अश्व आदि के लिए भी कल्याणकारी बनें।

हे निवास करने के योग्य देह, गृह, और राष्ट्र के पालक प्रभो! गृहपते! और राजन्! आप हमारा नाव के समान संकट से पार उतारने वाला और गृह, प्राण और धन को बढ़ाने वाले हो। हे ऐश्वर्यवन्! चन्द्रवत् आह्लादक ! आप हमें गौओं और अश्वों सहित प्राप्त हो। आपसे मित्र-भाव में हम जरा, वृद्धावस्था से रहित, सदा उत्साह और बल से युक्त होकर रहें। हम से आप पुत्रों को पिता के समान प्रेम कर वाले बनें। हे गृह, देह और राष्ट्र के पालक! आपकी अति रमणीय सुखदायक उत्तम वाणी और उत्तम भूमि से युक्त सहवास और सभा से हम लोग सदा सम्बन्ध बनाये रखें रक्षा-कार्य और अप्राप्त धन को प्राप्त करने में हमारी अच्छी प्रकार से रक्षा करो साथ ही हमारे धन की रक्षा करें। हे विद्वानों! आप लोग सदैव हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करें।

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।

यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥1॥

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।

अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥2॥

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।

पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥3॥ (ऋग्वेद 7,54.1.2.3)

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् । द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा (सा.8.17.14)

वेद के अनुसार सूक्ष्म ब्रह्माण्ड वृहद ब्रह्माण्ड का प्रतिबिंब है। आवास एक पारिस्थितिक इकाई है, वास्तुशास्त्र भवन बनाने की एक अत्यधिक परिष्कृत विधि है जो ब्रह्माण्ड की एक लघु प्रतिकृति है जैसा कि वेदों द्वारा माना जाता है। वास्तुशास्त्र ब्रह्माण्डीय अन्तरिक्ष के गुणों का अनुकरण करने एवं ब्रह्माण्डीय दिशाओं के दिव्य प्रहरियों व देवताओं को हमारे आवासों में अच्छे वातावरण तथा सद्भाव पैदा करने के सन्दर्भ में है जहाँ प्रकृति की समस्त शक्तियाँ सन्तुलित रह सकें तथा एक दूसरे के साथ शान्ति स्थापित कर सकें। जैसा कि यजुर्वेद में प्रार्थना है-

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः,

पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः।

सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

अर्थात् द्युलोक शान्तिदायक हो, अन्तरिक्ष लोक शान्तिदायक हो, पृथ्वीलोक शान्तिदायक हो। जल, औषधियाँ और वनस्पतियाँ शान्तिदायक हों। सभी देवता, सृष्टि की सभी शक्तियाँ शान्तिदायक हों। ब्रह्म हमें शान्ति प्रदान करने वाले हों। उनका दिया हुआ ज्ञान, वेद शान्ति देने वाले हों। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि शान्ति पूर्ण हो अर्थात् सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो और ऐसी शान्ति हमें प्राप्त हो जो सदैव वृद्धि करते रहे। **ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं नः इन्द्रो वृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।** (तैत्तिरीयोपनिषत् अ. 1)

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद में वास्तु (यज्ञ- देववास्तु, शाला, आवासीय वास्तु, व्यावसायिक वास्तु, शिल्पवास्तु एव चित्रकला **राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्त्रस्थूण आसाते॥ऋ.** 2.41.5, **अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः। राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्त्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ।।ऋ.** 5.62.6, **इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्। छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया**

दिद्युमेभ्यः॥ऋ.6.46.9, यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे। स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य1स्मे ॥ऋ.7.101.2, तस्मै तवस्य1मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ। प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत्॥ ऋ.2.20.8, यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः। तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि॥ऋ. 7.3.7, शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥ऋ.4.30.20 अथर्वेद में पूर्णरूप से वास्तुशास्त्र विकसित हो गया यथा- समस्त द्वारोंवाली वा समस्त श्रेष्ठ पदार्थोंवाली शाला को देखने में सराहने योग्य, प्रतिमानयुक्त अर्थात् जिसके आमने-सामने की भीतें, द्वार, खिड़की आदि एक माप में हों और, काष्ठ आदि के मेलों को हम अच्छे प्रकार बन्धनयुक्त करते हैं **उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत। शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि अ.9.3.1॥ अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम्। यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः। तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥** अ.9.3.15

2.2. वेदांगों में ज्योतिषशास्त्र-

अपौरुषेय की परिधि में अवस्थित वेदों के मन्त्रद्रष्टाओं ने युगानुरूप वेदनिधि के अर्थ के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष इन विशिष्ट वेदों के अध्ययन के लिए छः वेदांगों का आविर्भाव किया तथा वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विश्व के उपकार के लिए भारतीय ऋषियों को प्रेरित किया। षड्वेदाङगों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर ही वेदाङगों का विन्यास वेदपुरुष के साक्षात् शरीर रूप में किया गया है। जैसा कि भास्कराचार्य ने कहा है -

"शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षा अस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं च्छन्द आद्यैर्बुधः।।"

सूर्यादिग्रहार्क्षादीनां गतिं स्थितिं चाधारीकृत्य कृतं शास्त्रं ज्योतिषशास्त्रम्। अर्थात् सूर्यादि ग्रहों तथा नक्षत्रों की गति व स्थिति का बोध कराने वाला चक्षु ज्योतिषशास्त्र है।

पाणिनि ने पाणिनीयशिक्षा में "**ज्योतिषामयनं चक्षुः**" ,तथा भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि में "**वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषम्**" का वर्णन किया है। पुनः नेत्र रूपी ज्योतिषशास्त्र समय ज्ञान हेतु अलङ्कृत है। जैसा कि नारद संहिता में वर्णन है-

"वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिश्शास्त्रमकल्मषम् ।

विनैतदखिलं कर्म श्रौतं स्मार्त्तं न सिद्धयति ।।"

ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त,संहिता और होरा ये तीन स्कन्ध हैं। इन तीन स्कन्धों में से संहिता स्कन्ध से वास्तुशास्त्र का उद्भव माना जाता है। अपने विकासक्रम में वास्तुशास्त्र भी तीन भागों में विभक्त हो गया। जिन्हें गृहवास्तु, मन्दिरवास्तु एवं व्यावसायिकवास्तु के रूप में विभाजित किया गया है, इसके लिए आचार्यों ने सामुद्रिक, गणित, ज्योतिष, छन्द, शिराज्ञान, शिल्प,यन्त्रकर्म और विधि इन आठ अङ्गों की योजना की प्रकल्पना के द्वारा वास्तुशास्त्र को वृहद् रूप प्रदान किया है।

2.3. वास्तुशास्त्र की परिभाषा -"वास्तु" शब्द का सामान्य अर्थ निवास है। "वस् निवासे" धातु से उणादि सूत्र "वसेस्तुन्" के द्वारा "तुन् प्रत्यय से वास्तु शब्द की निष्पत्ति होती है। वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ "वसन्त्यस्मिन्नितिवास्तु" है। अर्थात् भूखण्ड को सुनियोजित स्वरूप प्रदान कर रहने योग्य स्थान बनाना ही वास्तु है। अमरकोष में वास्तु शब्द के लिए "वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम इत्यमर:" कहा गया है अर्थात् वास- किसी भूखण्ड, भवन या धार्मिक स्थान की आधारशिला को वास्तु कहा जाता है।

2.4. वास्तु के पञ्च महाभूत- पृथ्वी, जल, तेज, वायु,आकाश। इन पञ्च महाभूतों से ही समस्त सृष्टि की संरचना हुई है। हमारे वैदिक ऋषियों ने पंचमहाभूतों के साथ प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अपार्टमेंट (बहुमंजिला गृह) फ्लैट, बंग्ला, दुर्ग, सरकारी आवास, गृह, अतिथिशाला, सभागार नगर और लोककल्याणादि हेतु यज्ञादि के लिए नियमों, विधियों एवं प्रविधियों का निर्माण कर जो वास्तुविन्यास किया है उसे ही वास्तु कहते हैं।

अग्नि-भूमि-नभस्तोयवायवः क्रमतो द्विज।
भौमादीनां ग्रहाणां तु तत्त्वान्येतानि वै क्रमात्।।(बृ.पा.हो.ग्र. स्व.अ.21)

2.5. वास्तुपुरुष का स्वरूप-

आचार्य वराहमिहिर ने वर्णन किया है कि -

किमपि किल भूतमभवद्वुन्धनं रोदसी शरीरेण।
तदमरगणेन सहसा विनिगृह्याधेमुखं न्यस्तम्।।
यत्रा च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठित: स तत्रैव।
तदमरमयं विधता वास्तुनरं कल्पयामास।।

प्राचीन समय में एक विशालकाय प्राणी की उत्पत्ति से सभी देवता आश्चर्यचकित हुए क्योंकि जिसने सम्पूर्ण भूलोक को ढंक लिया था, जिसे देखकर इन्द्र सहित समस्त देवताओ में भय व्याप्त हो गया। तब

वे देवता ब्रह्मा के पास जाकर उनसे प्रार्थना करने लगे तो ब्रह्मा जी ने कहा आप सब मिलकर अधोमुख कर भूमि पर विग्रह कर दें। जब देवताओं नें मिलकर इस प्राणी को पकड़ा तथा इसका मुख नीचे करते हुए पृथ्वी पर गिरा दिया था। इस महाभूत का सिर ईशान (उत्तर-पूर्व) कोण में एवं पैर नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) कोण में थे। इस महाभूत का जो अंग जिस देवता ने पकड़ा था उसी अंग पर बैठ गए। वास्तुराजवल्लभ में मण्डनसूत्रधार ने अन्धकासुर और शिवजी के युद्ध में शङ्कर जी के शरीर से स्वेद गिरा जिससे यह महाभूत पैदा हुआ। ब्रह्मा ने इस प्राणी को वास्तुपुरुष नाम दिया। **भाद्रपद मास, कृष्णपक्ष की तृतीया तिथि, शनिवार, कृत्तिका नक्षत्र, व्यतिपात योग, विष्टिकरण तथा कुलिक मुहूर्त में इस महाभूत की उत्पत्ति हुई।** जैसा कि विश्वकर्मा प्रकाश में वर्णन है-

तमेव वास्तुपुरुषं ब्रह्मा समसृजत्प्रभुः।
कृष्णपक्षे तृतीयायां मासि भाद्रपदे तथा।।
शनिवारेऽभवज्जन्म नक्षत्रे कृत्तिकासु च।
योगस्तस्यव्यतीपातः करणं विष्टिसंज्ञकम्।।
भद्रान्तरेऽभवज्जन्म कुलिकेतु तथैव च।
क्रोशमानं महाशब्दं ब्रह्मां समुपद्यत।। (वि.प्र.11-13)

उस समय उस प्राणी ने भयंकर गर्जना करते हुए ब्रह्मा जी से प्रार्थना की-हे प्रभु! आपने इस चराचर जगत् की सृष्टि की है, और आपने ही मेरी उत्पत्ति की है किन्तु बिना दोष के देवता मुझे अत्यन्त कष्ट दे रहे हैं, इसकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि ग्राम, नगर, दुर्ग, प्रासाद, जलाशय, गृह, तथा उद्यान के निर्माणारम्भ के समय हे वास्तुपुरुष जो आपका पूजन नहीं करेंगे, वे दरिद्रता और मृत्यु को प्राप्त होंगे तथा उनको पग-पग पर समस्याओं का सामना करना पड़ेगा और भविष्य में आपका आहार बनेगा। ऐसा कहकर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गए। अतः वास्तु में प्रवेश के समय वास्तुपूजा करनी चाहिए।

वरं तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मा लोकपितामहः।
ग्रामे वा नगरे वापि दुर्गे वा पत्तनेऽपि वा।।
प्रासादे च प्रपायां च जलोद्याने तथैव च।
यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद् वास्तुनरप्रभोः।।
आश्रित्यं मृत्युमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति।।(वि. प्र. 1.14-17)

अत: गृहारम्भ और गृह गृहकर्म में इक्यासी एवं प्रासाद, मन्दिर एवं राजमहल कार्य में चौसठ पद वास्तुमण्डल निर्माण एवं पूजा का विधान है। वास्तुपुरुष के मस्तक पर ब्रह्मा, कानों में पर्जन्य और दिति, गले में आप, कन्धों पर जय और अदिति, स्तनो में अर्यमा तथा भूधर हृदय में आपवत्स, इन्द्रादि पाँच देवता दक्षिण बाहु में और नागादि वामभुजा में हैं। सावित्र और सविता दोनों दक्षिण हाथ में, रुद्रादि दो देव वाम हाथ में है और मैत्रगण उरु से है, ब्रह्मा नाभि तथा पृष्ठ में मेढ्र इन्द्र और जय दोनों जानु में अग्नि तथा रोग, गुल्फों में पूषा और नन्दिगणादि सात देवता हैं। पितृगण पैरों में हैं। ईश पर्जन्य, जय इन्द्र, सूर्य, सत्य भृश, और आकाश इनको पूर्व में, अग्नि, पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृग और पितृदेव दक्षिण में, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शोष और पापयक्ष्मा पश्चिम में रोग, नाग मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल, अदिति और दिति को उत्तर में स्थापित कर ये 32 देव हुए ओर वक्ष्यमाण 13 देवता को पूजा मध्य में करें। पूर्व में अर्यमा, दक्षिण में सूर्य, पश्चिम में मित्र, उत्तर में पृथ्वीधर और मध्य में ब्रह्मा की पूजा करें। बाहर ईशान कोण में चरकी, अग्नि में विदारिका और पूजनिका वायव्य में पाप नामवाली की उक्तविधि से पूजा करें। ईशान में शिखी अग्निकोण में वायु कुबेर के बाद शैल का भी वर्णन ग्रन्थों में मिलता है।

2.6. वास्तुशास्त्र का विकास एवं उपयोगिता-

कल्पवेदाङ्ग के शुल्वसूत्र से यज्ञ एवं देववास्तु, विश्वकर्मा प्रकाश ग्रन्थ के अनुसार यज्ञ वेदियों, देववास्तु, राजवास्तु एवं जनवास्तु का विकास हुआ। वराहमिहिर एवं मय ने महानगरों, नगरों, ग्रामों एवं गृहों के विकास के साथ मन्दिर मूर्तिकला के निर्माण को भी वास्तुशास्त्र के अनर्गत समाहित किया है। भोजराज ने समराङ्गण सूत्रधार में वास्तुशास्त्र को तीन भागों में विभक्त कर दिया 1. वास्तु, 2. शिल्प, 3. चित्र। अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण आदि ग्रन्थों में भी देवताओं और उनके मंदिरों की मूर्तियों के निर्माण का वर्णन हैं। इस प्रकार वास्तुशास्त्र के समरांगण सूत्रधार, प्रासादमण्डन, वास्तुराजवल्लभ, वास्तुमण्डन, वास्तुरत्नाकर, राजसिंह वस्तु, मनुषालय चंद्रिका, वृहद्वास्तुमाला, आदि सैकड़ों ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

ऋषियों ने पंचमहाभूतों के साथ प्राकृतिक शक्तियों का प्रबन्धन कर आवास, व्यवसाय तथा धार्मिक क्रियाकलापों के लिए वास्तुशास्त्र और ऊर्जा के बीच संतुलन स्थापित कर ऐसे भवन निर्माण कियें जिससे उसमें निवास करनेवाले निवासियों को समृद्धि, सुख, सम्पन्नता और मानसिक शान्ति प्राप्त हो सके। इस प्रकार वेदों में वास्तु से सम्बन्धित अनेकानेक लाभ ले सकते हैं। वेदांग ज्योतिष एवं कल्प दोनों ही एक ही शास्त्र के स्त्रोत हैं। अतः वेदों एवं वेदांगों के आधार पर कह सकते हैं कि मनुष्यों के सुखमय जीवन के लिए तथा श्रौत-स्मार्त कर्मों की साधना के लिए वास्तुशास्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है और ज्योतिषशास्त्र

एवं वास्तुशास्त्र का परम लक्ष्य मानव को सुख प्रदान करना है। इसका वेद, वेदांगों, पुराणों, रामायण एवं महाभारत, समराङ्गण सूत्रधार, बृहत्संहिता, जयसिंह वास्तु में वर्णन मिलता है। जैसा कि भविष्य पुराण में भी कहा गया है-

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्धयन्ति गृहं विना।

यतस्तस्माद् गृहारम्भकर्म यात्राभिधीयते।।

गृह के स्वामी के नाम के अनुसार उपयुक्त देश, नगर, ग्राम, स्थान, गृह का सर्व प्रथम निर्धारण करना चाहिए क्योंकि गृहस्थ की सभी क्रियाएँ स्वगृह में ही सिद्ध होती हैं परगृह में नहीं यद्यपि परगृह में निवास कर सकते हैं लेकिन उस घर में श्रौत-स्मार्त्त शुभ कर्मों का फल गृहपति को प्राप्त होता है।

परगेहे कृताः सर्वा श्रोतस्मार्त्तक्रियाः शुभाः।

न सिद्धयन्ति यतस्तस्माद् भूमीशः फलमश्नुते ।।(बृ.वा.मा.1.7)

तत्पश्चात् अभीष्ट स्थान का वास्तुपद विन्यास, दिक् साधन, प्रमाण विचार, पताका, आयव्ययादि निर्णय के द्वारा ही शुभकाल में गृहारम्भ करना चाहिए क्योंकि सूर्य, चन्द्रादि ग्रहों एवं अश्विन्यादि नक्षत्रों का प्राकृतिक शक्तियों का सृष्टि के सन्तुलन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। अतः मनुष्य का शरीर भी पञ्चभूतात्मक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश का ही समिश्रण है। अर्थात् सब कुछ इन पाँच तत्त्वों पर ही निर्भर है। पृथ्वी हमारी माता है **"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्या"** **अथर्ववेद** 12.1.12) और उसी पर गृह बनाते हैं तथा वही हमारा भरण पोषण भी करती है और इसी में दिव्य वास्तुदेव विराजमान हैं, इनका प्रभाव भवनादि भूमि पर शुभाशुभ प्रभाव पड़ता है उसी सूर्य, चन्द्रादि ग्रहों एवं अश्विन्यादि नक्षत्रों का भी प्रभाव पड़ता है।

वास्तु मण्डल के प्रत्येक देवता एक ब्रह्माण्डीय बल का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसे पृथ्वी पर भौतिक प्रभाव के रूप में वास्तुशास्त्र द्वारा समझ सकते हैं।

प्रत्येक दिशा का अपना संरक्षक होता है, उन्हें दिकपाल कहते हैं। यथा- पूर्व का स्वामी इन्द्र, अग्नि, दक्षिण-पूर्व का स्वामी यम, दक्षिण का स्वामी निऋति, दक्षिण-पश्चिम के अधिपति देवता वरुण, पश्चिम का स्वामी वायव्य, उत्तर-पश्चिम अधिपति देवता कुबेर, उत्तर का स्वामी कुबेर हैं।

ज्योतिषशास्त्र के संहिता विभाग में वास्तुशास्त्र का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। ज्योतिषशास्त्र के विचारणीय पक्षों के दिग्देश काल के कारण ही वास्तुशास्त्र का विनियोजन ज्योतिषशास्त्र में हुआ। मानव जीवन के विविध पक्षों का वैदिककाल से सूक्ष्मातिसूक्ष्मविचार ज्योतिषशास्त्र स्वीकार करता है क्योंकि इस शास्त्र का उद्देश्य मानव जीवन का कल्याण व प्रगति के शिखर को प्रदान करना है। उस

शिखर पर पहुँचाने में कालविधान के ज्ञापक ज्योतिषशास्त्र का दिक्काल एवं देशसापेक्ष काल के महत्त्व को विश्वकर्मा ने उल्लेख किया है कि

आदौ कालं परीक्षेत सर्वकार्यार्थसिद्धये।
कालो हि सर्वजीवाना शुभाशुभफलप्रद:॥
कालातिक्रमणे दोषो द्रव्यहानिश्च जायते।
देवानामपि देवीनां विप्रादीनां विशेषत:॥
प्रसाद भवनारम्भे स्तम्भस्थापनकर्मणि।
द्वारस्थापनवेलायां भवनानां प्रवेशने॥
वापीतटाकनिर्माणे गोपुरारम्भकर्मणि।
विमानमण्डपारामगर्भगेहोद्भूतो तथा।।
कालं शुभं परीक्षेत मङ्गला वाप्ति साधकम्।
देशभेदेन कालोऽपि भिन्नता प्रतिपद्यते॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभं कालं न लङ्घयेत्॥
प्रसादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात् तस्यात् संसाधयेदिदशः॥ (वा.शा.सा.)

2.7. **वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक-** अग्निपुराण में वास्तुशास्त्र के पच्चीस प्रवर्तकों का उल्लेख प्राप्त होता है जबकि मानसार में बत्तीस आचार्यों का वर्णन है। अर्थात् वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का वास्तुशास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न वर्णन प्राप्त होता है। यद्यपि निम्नलिखित इन अठारह आचार्यों का वर्णन सर्वत्र मिलता है- भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र, बृहस्पति आदि जैसा कि मत्स्यपुराण में कहा गया है कि-

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मामयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्ष: पुरन्दर:॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीश: शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका:।
संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिण:।। (म.पु. अ.253.2-4)

सारांश-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ गए होंगे कि इस सृष्टि की रचना करने वाला वेद ही है। वेदों से ही आचार- व्यवहार, शिल्प, चित्रकला, वास्तु, आजीविका का ज्ञान और विज्ञान का उद्भव हुआ था। वेदों ने ही हमें सृष्टि का संरक्षण, संवर्धन और सतत्पोषणीय विकास का ज्ञान कराया है। अपौरुषेय वेदों के इस ज्ञान एवं विज्ञान ने ऋषियों को अलौकिक दृष्टि प्रदान कर विश्व का कल्याण करने का उपदेश देकर सार्वभौमिक राष्ट्र की स्थापना की और लोगों ने प्रकृति को समझा। अर्थात् ऋषियों ने अपनी तपस्या के आध्यात्मिक ज्ञान की अन्तर्दृष्टि के अनुभव से विज्ञान के विविध रहस्यों का वेद मन्त्रों के द्वारा शिष्यों को आध्यात्मिक, भौतिक एवं आदिदैविक विद्याओं का प्रायोगिक रूप से अवलोकन कराते हुए प्रतिपादित किया कि प्रकृति के संरक्षण तथा सतत्पोषणीय विकास के द्वारा ही मानव का कल्याण होगा। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि हम मन्त्रों के द्रष्टा हैं,कर्ता नहीं लेकिन ये सनातन वेद की तपस्या के प्रायोगिक अनुभव का ही फल है- यथा ऋषि वचन –**'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार: न तु कर्त्तार:'**। **'ईशावास्यमिदं सर्वम्'** की अद्वितीय भावना ने हम भारतीयों को अपने दैनिक व्यवहार में संस्कृति का आदर व पालन करना सिखाया और चराचर जगत को उस परमपिता परमात्मा के अंश का अनुभव कर पञ्चमहाभूतों के समन्वय के द्वारा वास्तु को समझा और पुष्पित व पल्लवित कर विश्व के निवासियों के लिए शुभकामना करते हुए अपने सुखोपभोग से पूर्व अन्य जीव जन्तुओं के लिए सुख की भावना से प्रकृति का आनन्द लेने की ओर अग्रसर हुए।

प्रश्न-

1. वास्तुशास्त्र की उत्पत्ति का वर्णन कीजिए?
2. वास्तुपुरुष के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
3. पञ्चमहाभूतों का वर्णन अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
4. वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों का वर्णन कीजिए।
5. वास्तुशास्त्र के विकास को स्पष्ट कीजिए।

इकाई -3 (भूखण्डविचार)

सर्वप्रथम भूखण्ड का विचार करना परमावश्यक है क्योंकि पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश के सन्तुलन के द्वारा ही शुभाशुभ का निर्णय होता है कि भूमि गृहस्वामी के लिए शुभ रहेगी अथवा अशुभ । अतः बिना भूमिचयन व भूखण्ड विचार के वास्तु विन्यास में भूमिपरीक्षा, कर्षण, वास्तु पद विन्यास, मानादि विचार एवं आयादि का निर्णय करना दुर्लभ है।

आकारवर्णशब्दादिगुणोपेतं भुवः स्थलम्।

संगृह्य स्थपतिः प्राज्ञो दत्त्वा देवबलिं पुनः ।। (भू. प्र. मयमत श्लो.1)

निर्माण-हेतु भुमि का ग्रहण-आकार, रंग एवं शब्द आदि गुणों से युक्त भूमि का चयन करने के पश्चात् बुद्धिमान स्वपति को देववलि (वास्तुदेवों की पूजा) करनी चाहिए।

स्वस्तिवाचकघोषेण जयशब्दादिमङ्गलैः।

अपक्रामन्तु भूतानि देवताच सराक्षसाः ॥(भू. प्र. मयमत श्लो.2)

वह स्वस्तिवाचक घोष एवं जय आदि मंगलकारी शब्दों के साथ इस प्रकार कहे-राक्षसों के साथ देवता एवं भूत दूर चले जाए।

वासान्तरं व्रजन्वस्मात् कुर्या भूमिपरिग्रहम्।

इति मन्त्रं समुच्चार्य विहिते भूपरिग्रहे ॥(भू. प्र. मयमत श्लो.3)

वे इस भूमि से अन्यत्र स्थान पर जाकर अपना निवास बनाएँ। हम इस भूमि को (गृहनिर्माण हेतु) ग्रहण कर रहे हैं। इस मन्त्र का उच्चारण करते हुये ग्रहण की गई भूमि पर अधोलिखित कार्य करना चाहिए ।

कृष्ट्वा गोमयमित्राणि सर्वबीजानि वापयेत्।

दृष्ट्वा तानि विरूढानि फलपक्वगतानि च ।।(भू. प्र. मयमत श्लो.4)

उस भूमि में हल चलवा कर गोबरमिश्रित सभी प्रकार के बीजों को उसमे बोकर, उन बीजों को उगा हुआ एवं उनमें पक्के हए फल देख कर। वृषभ एवं बछडों के साथ गायों को वहाँ रखना चाहिए, क्योंकि गायों के वहाँ निवास करने से वह भूमि पवित्र हो जाती है।

सवृषाञ्च सवत्साच ततो गास्तत्र वासयेत्।

यतो गोभिः परिक्रान्तमुपघ्राणैश्च पूजितम् ॥ (भू. प्र. मयमत श्लो.5)

चतुरस्त्रसमं कुर्यात् गर्तमिष्टकयाश्मना।

आपूर्य सलिलं तस्य मूले सर्वमृदं क्षिपेत् ॥4।।

वास्तुभूमि के मध्य में एक हाथ गहरा एवं चौकोर गर्त खोदें, जिसकी दिशाओं की खुदाई भी दोषों से रहित होनी चाहिए। गड्ढे की न तो अधिक चोड़ाई हो और न ही अधिक गहराई हो, यह विशेष ध्यान रखना चाहिए-

अरत्निमात्रगम्भीरं चतुरस्रसमन्वितम्।

दिग्भागस्थमसम्भ्रान्तमसंक्षिप्तसमुच्छ्रयम्।। (मयमत 4.11)

3.1. **प्रशस्तभूमि-** उत्तम औषधि के वृक्ष, लतावाली मधुर चिकनी सुगन्धित, समतल, परिश्रम को दूर करने के प्रभाव वाली भूमि गृहपति को धन, सुख शान्ति देती है।जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने कहा है-

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा स्निग्धा समानसुखदा च मही नराणाम्।

अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु। (बृ.वा.मा.78)

3.2. **भूमिदोष**- फटी हुई अर्थात् दरारों से युक्त, शल्ययुक्त, दीमकों से युक्त,एवं ऊँची-नीची भूमि को भवन दोष युक्त होती है। अतः भवन निर्माण करने वाले को वहाँ निर्माण कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसी भूमि आयु और धन का नाश करती है। जैसा कि वास्तुप्रदीप में वर्णन है-

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकाऽऽरोहिणी तथा।

दूरतः परिहर्तव्या कर्त्तुरायुर्धनापहा।।(बृ.वा.मा.79)

जिस भूमि में बाढ़ आती हों, बडी-बड़ी पत्थर शिलाएँ हों, किसी पर्वत के नीचे या अन्त में दरारों से युक्त हो, असमान आकार वाली, अदिक तेज हवाएँ चलती हो, जहाँ भालुओं और गीदड़ का निवास हो, मन्दिर के निकट, श्मशान के निकट, चौराहें के पास, दीर्घ शाखाओं से युक्त वृक्ष हो, जहाँ अत्यधिक गड्ढे हों, सरकारी आवास हों ऐसी भूमि में गृह निर्माण नहीं करना चाहिए। यथा-

नदीधाताश्रितां तद्वन्महापाषाण संयुक्ताम्।।

पर्वताग्रेषु संलग्नां गर्तां विवरसंयुताम्।

वक्रां सूर्पनिभां तद्वल्लकुटाभां कुरुपिणीम्।।

मुसलाभां महाघोरा वायुना वापि पीडिताम्।

वल्लभल्लूकसंयुक्तां मध्ये विकटरूपिणीम्।।

श्वश्रृगालनिभां दन्तकैः परिवारिताम्।

चैत्यश्मशानवल्मीकधूर्तकालयवर्जिताम्।।

चतुष्पथ महावृक्ष देवमन्त्रिनिवासताम्।

दूराश्रिताश्च भूगर्त्तयुक्तां चैव विवर्जयेत्।। (वि.क.प्र.1.35-39)

3.3. **भूमिदोष के फल**- फटी हुई भूमि से मृत्यु ऊषर से धन नाश, शल्युक्त से सदैव कलह, ऊँची- नीची से शत्रु वृद्धि, श्मशान जैसी भूमि से भय, दीमकों से युक्त भूमि से विपत्तियाँ, गड्ढोवाली से निनाश एवं कूर्माकार से धन नाश होता है। यथा-

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी।

सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी।।

चैत्ये भयं गृहकृतो वल्मीके स्वकुले विपत्।

गर्तायांतु विनाशः स्यात् कूर्माकारे धनक्षयः।।(बृ.वा.मा.80-81)

3.4. **गजपृष्ठ भूमि लक्षण**- जो भूमि दक्षिण, पश्चिम, नैऋत्य, और वायु कोण में ऊँची हो उस भूमि को गजपृष्ठ भूमि कहते हैं - यथा

दक्षिणे पश्चिमे चैव नेर्ऋत्ये वायुकोणके ।

एभिरुच्चा यदा भूमिर्गजपृष्ठाऽभिधीयते ॥ बृ.वा.मा.82॥

3.5. **गजपृष्ठ भूमि के फल**- गजपृष्ठ भूमि में वास करने से लक्ष्मी का निवास और आयु की वृद्धि निरन्तर होती है।

गजपृष्ठे भवेद्वासः स लक्ष्मीधनपूरितः।

आयुवृद्धिकरो नित्य जायते नात्र संशयः॥ बृ.वा.मा.83॥

3.6. **कूर्मपृष्ठ भूमिलक्षण-**

मध्येऽत्युच्च भवेद्यत्र नीच चैव चतुर्दिशम्।

कूर्मपष्ठा भवेद् भूमिस्तत्र वासो विधीयते॥बृ.वा.मा. 84 ॥

जो भूमि मध्यभाग में ऊँची हो एवं चारों विशाओं में नीची हो उसके कूर्मपृष्ठ भूमि कहते हैं, ऐसी भूमि वास करने योग्य अर्थात् शुभ होती है।

3.7. **कूर्मपृष्ठ के फल-**

कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः।

धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम्॥ बृ.वा.मा.85॥

कूर्मपृष्ठ भूमि पर वास करने से नित्य उत्साह की वृद्धि सुख और धन-धान्य का विशेष लाभ होता है।

3.8. **दैत्यपृष्ठ भूमिलक्षण-**

पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु उन्नतिश्च यदा मवेत् ।

पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोऽभिधीयते ॥ बृ.वा.मा.86 ॥

जो भूमि ईशान पूर्व तथा अग्निकोण में ऊँची हो और पश्चिम में नीची हो, उसे दैत्यपृष्ठ भूमि कहते हैं।

3.9. **दैत्यपृष्ठ भूमि के फल-**

दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे।

धनपुत्रपशूनां च हानिरेव न संशयः॥ बृ.वा.मा. 87॥

दैत्यपृष्ठ भूमि पर निवास करने से लक्ष्मी नहीं आती और धन पुत्र पशु आदि की हानि होती रहती है।

3.10 **नागपृष्ठ भूमि लक्षण-**

पूर्वपश्चिमयोर्घो दक्षिणोत्तर उच्चकः।

नागपृष्ठं विजानीयात् कर्तुरुच्चाटनं भवेत्॥ बृ.वा.मा.88॥

जो भूमि पूर्व पश्चिम में लम्बी हो तथा दक्षिण एवं उत्तर की ओर ऊँची हो। ऐसी नागपृष्ठ भूमि उच्चाटन करने वाली होती है।

3.11. **नागपृष्ठ भूमि के फल-**

नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः।

पत्नीहानिः पुत्रहनिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे॥ बृ.वा.मा.89॥

नाग पृष्ठ भूमि पर वास करने से अवश्य ही मृत्यु होती है। स्त्रीहानि पुत्रहानि और पद-पद में शत्रुवृद्धि होती है।

सर्पाभा पुत्रपौत्रघ्नी वंशाभा वंशहानिदा । (वि.क.प्र.1.47)

3.12. **वासयोग्याभूमि-** गर्गादि ऋषियों के अनुसार जिस भूमि पर पहुँचते ही मन और आँखें प्रसन्न हों, उस भूमि पर गृह बनाकर निवास करना चाहिए। यह गर्ग आदि ऋषियों का मत है। यथा-

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।

तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम् ॥बृ.वा.मा.93॥

श्वेत, रक्त, पीत, और कृष्ण वर्ण वाली, अश्व तथा गज के निनाद से युक्त, मधुर, रिक्तादि छः स्वादों से युक्त, एक वर्ण की, गाय, धान्य और कमल के गन्ध वाली, पत्थर एवं भूसे से रहित, दक्षिण और पश्चिम में ऊँची, पूर्व और उत्तर में ढलानवाली, श्रेष्ठ सुरभि के सदृश, शूल एवं अस्थि से रहित, कणद(धूल, वालू) आदि से रहित भूमि सभी के लिए शुभ होती है, ऐसा श्रेष्ठ मुनियों के वचन हैं। यथा-

श्वेतासृक्पीतकृष्णा हयगजनिनदा षड्सा चैकवर्णा

गोधान्याम्भोजगन्धोपलतुषरहितावाक्प्रतीच्युन्नता या।

पूर्वोदग्वारिसारा वरसुरभिसमा शूलहीनास्थिवर्ज्या

सा भूमिः सर्वयोग्या कणदररहिता सम्मताद्यैर्मुनीन्दैः।। (म.म.3.20)

3.13. **भभूखण्ड की आकृतियाँ-**

आयत' क्षेत्राकार भूमि पर वास करने से (जिस भूमि के आमने-सामने की दोनों भुजाएँ समान और कोण सम कोण हों) सर्वसिद्धि, चतुरस्र (जिसकी लम्बाई चौड़ाई समान हो) भूमि पर धनागम, वृत्ताकार भूमि बुद्धि की वृद्धि, भद्रासन भूमि सब प्रकार का कल्याण, चक्राकार पृथ्वी पर दरिद्रता, विषम भूमि (ऊँची नीची) पर शोक, त्रिकोणाकार भूमि पर राजभय, शकटाकार भूमि पर धनक्षय, दण्डाकार भूमि पर पशुओं का नाश, शूर्पाकार भूमि पर गोधन का नाश, व्यजनाकार भूमि पर अर्थक्षयबन्धन भूमि पर पीड़ा तथा धनुषाकार भूमि पर निवास करने पर विशेष भय, कुम्भकार भूमि कुष्ठरोगकारी, पवनाकार भूमि नेत्रज्योति और धननाश, मुरजाकार भूमि बन्धु-बान्धवों का क्षय। इस प्रकार भूमि के आकार का वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। जैसा कि वास्तुरत्नावली में वर्णन है-

आयते सिद्धयस्सर्वाचश्तुरस्त्रे धनागमः।
वृत्ते तु बुद्धिवृद्धिः स्यादभद्रं भद्रासनं भवेत्॥
चक्रे दारिद्र्यमित्याहुर्विषमे शोकलक्षणम्।
राजभीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे तु धनक्षयः॥
दण्डे पशुक्षयं प्राहुः शूर्पं वासे गवां क्षयः।
कर्म्मे तु बन्धनं पीडाः धनुः क्षेत्रे भयं महत्।।
व्मुम्भाकारे कुष्ठरोगा भवत्येव न संशयः।
पवने नश्यति नेत्रं धनञ्च बन्धुक्षयो मुरजे॥ (वा. र. 60-64)

अर्थात् - आयताकार, वर्गाकार, भद्रासन, वृत्ताकार, त्रिशूल के सदृश, शुभ चिह्न के समान, मटके के समान, महल की ध्वजा के समान भूमि देवताओं के लिए भी दुर्लभ होती है अर्थात् सभी प्रकार के भवनों के लिए भूमि शुभ होती है। गोमुखी भूखण्ड आवासीय भवन और सिंहमुखी भूखण्ड पर व्यावसायिक भवन बनाना शुभ है। इसके अतिरिक्त भूखण्ड त्रिभुजाकार, विषमवाहु, चक्राकार, सूर्पाकार, अर्धवृत्ताकार, अण्डाकार, शकटाकार, धनुषाकर, विजनाकार, कूर्मपृष्ठाकार, ताराकार, त्रिशूलाकार, पक्षीमुख एवं कुम्भाकार भूखण्ड अशुभ होते हैं। लेकिन इन भूखण्डों पर भवन का निर्माण करना अत्यावश्यक हो तो उनके बीच में आयताकार या वर्गाकार आकार निर्णय भवन निर्माण कर सकते हैं।

चतुरस्त्रां द्वीपाकारां सिंहोक्षाश्वेभरूपिणीम्।
वृतञ्च भद्रपीठञ्च त्रिशूलं लिङ्गसन्निभम्।।
प्रासादध्वजकुम्भादि देवानामपि दुर्लभाम् ।।(विश्वकर्माप्रकाश 1.27-28)

प्रशस्त भूमि की आकृतियाँ-

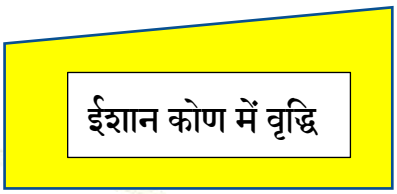

देवताओं और द्विजातीयों के लिए आयताकार भूमि शुभ होती। भूखण्ड की आकृति शास्त्रोक्त उत्तम होनी चाहिए तथा उसकी दक्षिण एवं पश्चिम दिशा सदैव ऊँची रखें जैसा कि मय के वचन हैं-

देवानां तु द्विजातीनां चतुरस्रायताः श्रुताः।

वास्त्वाकृतिरनिन्द्या सावाक्प्रत्यग्दिक्समुन्नता।।(वि.क.प्र.3.1)

3.14. **भूमि के भेद-** श्वेत, लाल, पीली और काली भूमि क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लिए प्रशस्त मानी गई है यथा-

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।

श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा वर्णानुपूर्वतः।। (वि.क.प्र.5.24)

शिल्परत्न में पूर्णा, सुपद्मा, धूम्रा और भद्रा चार प्रकार के भूमि के भेदों का वर्णन है यथा-

पूर्णा सुपद्मा च तथैव भद्रा धूम्रा च भूमिर्विहिता चतुर्धा।

वक्ष्ये च तासामपि लक्षणानि संक्षेपतो भूमिपरिग्रहार्थम्।। शिल्परत्नम् 3.4)

विश्वकर्मा ने गुण भेद के अनुसार भूमि के तीन भेदों का उल्लेख किया है यथा- उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

3.15. **भूमि के वर्ण-** ब्राह्मणादि वर्णों के लिए क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत एवं कृष्ण वर्ण की भूमि का वर्णन है किन्तु श्वेत वर्ण की भूमि सभी वर्णों के लिए पुत्र-पौत्रवर्धक होती है। यथा-

स्ववर्णवर्णा स्वान् वर्णान् वर्णानामधिपत्यदा।

शुक्लवर्णा च सर्वेषां पुत्रपौत्रविवर्धनी॥

अतः भूमि का सामान्य ज्ञान होने के पश्चात् ही वास्तुनिवेश करना चाहिए चाहिए जिससे वास्तुस्थापत्य का शुभ निर्धारण हो सके। निवेशन प्रक्रिया के आठ भागों का भोजराज ने उल्लेख किया है- भूमिचयन, भवन प्रकार, विनियोजन, प्रतिकृति, द्रव्यचयन, भवन के अंग, सज्जा, दोषादि।

3.16. **भूमिचयन-** ग्राम, स्थान का चयन एवं उनमें अपने अनुकूल दिशा का चयन करने के उपरान्त गृहकर्त्ता को अपने वर्ण एवं राशि के अनुकूल भूमि का चयन भूमि की आकृति, प्लव, रंग,गन्ध, स्वाद, भूमि स्थित दूर्वा, वृक्षादि अनेक विधियों के द्वारा भूमि का चयन करना चाहिए।

भूखण्ड चयन के निर्णय में सर्वप्रथम भूखण्ड के आसपास के वातावरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि भूमि के प्रकार, भूमि के निकट के अन्य भूखण्ड पर स्थित भवन निर्माण, पेड़-पौधे, नदी-तालाब, समुद्र, पत्थर, पर्वत आदि का भूमि के चयन के समय अध्ययन किया जाता है क्योंकि पञ्चमहाभूतों, दिशाओं और प्राकृतिक शक्तियों का समन्वय ही वास्तु है । इन प्राकृतिक विशेषताओं के कारण ही स्थान विशेष में वास्तु की दृष्टि से शुभाशुभ भूमि का वर्णन वैदिक सभ्यता से लेकर वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रकृति की शुद्धता, क्षेत्र विशेष का पर्यावरण आदि विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

प्रकृति के शुभाशुभत्व का प्रभाव ही भूमि को शुभाशुभ बनाता है। अतः वास्तुशास्त्र में स्थान- विशेष पर विचार करने के स्पष्ट निर्देश प्राप्त होते हैं। वृहद्वास्तुमाला, विश्वकर्मा प्रकाश और मयमत में वर्णन है कि स्थान की सुन्दरता को देखकर प्रथमदृष्टया स्वामी का मन प्रसन्न हो जाए तो वहाँ भवन निर्माण कर लेना चाहिए। जैसे -

मनसश्रक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्यां कार्य गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्॥ बृ.वा.मा.93।।

अर्थात् जिस भूमि पर मन एवं नेत्र प्रफुल्लित तथा सन्तुष्ट हो जाए, उस भूमि पर गृहनिर्माणादि कर लेना चाहिए। यह गृहस्वामी के अन्त:करण का सर्वसिद्ध भूमि चयन मन्त्र है और इस सम्बन्ध में सभी वास्तु के आचार्य एक मत है।

आचार्य वराहमिहिर के अनुसार जिस भूमि यर शुभ लता एवं वृक्षादि हो, भूमि चिकनी, सुगन्धित, समतल तथा तन-मन के थकान को दूर करने वाली हो, वहाँ गृह का निर्माण गृह स्वामी को धन, समृद्धि, सुख एवं शान्ति प्रदान करता है यथा-

शस्तौषधिद्रमतता मधुरा. सुगन्धा
स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम्।
अत्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानाम्
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥

पुनः बराहमिहिर जी ने कहा है कि यदि गृह के समीप मन्त्री का आवास, धूर्त मनुष्यों का गृह, देवमन्दिर, चौराहा, ग्राम का प्रधान वृक्ष, दीमक, जीव- जन्तुओं के बिल, गड्ढा एवं कछुआ की आकृति (बीच से उठी) भूमि का चयन नही करना चाहिए। यथा-

सचिवालये धननाशो धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे ।

उद्वेगो देवकुले चतुष्पथणे भवति चाकीर्तिः ॥ (बृ. स.वा. अ. 87)

गृह के निकट मन्त्री का आवास हो तो धन की हानि, यदि धूर्त व्यक्ति का गृह हो तो पुत्र का वध, देव-कुल का हो तो व्याकुलता, चौराहा हो तो अपयश, चैत्य वृक्ष हो तो ग्रह (भूत-प्रेत) के प्रकोप से पीड़ा, दीमक की बाँबी तथा बिल हों तो विपत्ति, गड्ढा होने पर प्यास तथा भूमि बीच में उठी हुई हो तो धन का विनाश होता है यथा-

चैत्ये भयं ग्रहकृतं वल्मीकश्चभ्रसङ्कुले विपदः ।

गर्तायां तु पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥ (बृ. स.वा. अ. 88)

वास्तुशास्त्र में स्थान के शुभाशुभ के सम्बन्ध में काकिणीविचार, ग्रामवासनराकृतिचक्र, शिवाबलि, राशिभेद से ग्रामवास, दिशाभेद से ग्रामवास आदि अनेक विधियाँ हैं। उनमें से सर्वाधिक प्रचलित भूमिशोधनप्रकार की चर्चा करेंगे-

ब्राह्मणों द्वारा यथाशक्ति स्वस्तिवाचन कराना चाहिए। इसके पश्चात् वास्तुक्षेत्र के मध्य में पृथिवी तल की खुदाई करनी चाहिए।

ब्राह्मणैश्च यथाशक्त्या वाचयेत् स्वस्तिवाचकम्।

वस्तुमध्ये ततस्तस्मिन् खानयेद् वसुधातलम् ॥ मयमत 4.10॥

वास्तु के मध्य में एक हाथ गहरा, चौकोर, जिसकी दिशायें ठीक हो, दोषरहित गड्ढा खोदना चाहिए। यह गड्ढा सँकरा नहीं होना चाहिए तथा न ही बहुत गहरा होना चाहिए।

अरलिमात्रगम्भीरं चतुरस्रसमन्वितम् ।

दिग्भागस्थमसम्भ्रान्तमसंक्षिप्तसमुच्छ्रयम् ॥ मयमत 4.11॥

इसके पश्चात् यथोचित विधि से पूजा करके तथा उस गड्ढे की वन्दना करने के पश्चात् चन्दन एवं अक्षतमिश्रित तथा सभी रत्नों से युक्त जल सिञ्चन करें। यथा-

अर्चयित्वा यथान्यायं तं कूपमभिवन्द्य च।

चन्दनाक्षतमिश्रेण सर्वरत्नोदकेन च ॥ मयमत 4.12॥

3.17. भूमिपरीक्षण एवं भूमिशोधनप्रकार-

खात एवं जल विधि से भूमि परीक्षा - समरांगण सूत्रधार के अनुसार भूखण्ड के मध्य में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदना चाहिए और उसको जल से परिपूर्ण कर शीघ्रता से सौ कदम आगे जाकर पुनः वहाँ से लौटकर निरीक्षण करें कि जल की क्या स्थिति है। यदि गड्ढे में जल की मात्रा एक चौथाई से कम तो वह भूखण्ड अनिष्टकारक, चौथाई भाग के आधे से अधिक जल शेष बचे तो मध्यम और चौथाई में से आधे से अधिक शेष जल रह जाए तो उत्तम भूखण्ड समझना चाहिए और इसी प्रकार उल्लेख विश्वकर्मा प्रकाश में मिलता है यथा-

जलेनापूरयेच्छ्भ्रं शीघ्रं गत्वा पदैः शतम्।

तथैववागम्य वीक्षेत न हीनसलिला शुभाः।। (वि.क.प्र.1.62)

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ की वैज्ञानिक विधि है क्योंकि जल की मात्रा से शुभाशुभ भूखण्ड का निर्णय किया जा सकता क्योंकि जल ही तो जीवन व अमृत है। किसी ने कहा भी है कि जल है तो कल है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस भूखण्ड पर निवास करनेवालों मे सुख-शान्ति बनी रहेगी क्योंकि जल मन, शीतलता और शान्ति का प्रतीक है।

खात एवं जल विधि से भूमि परीक्षा - उपर्युक्त क्रम में गड्ढा का निर्माण करके गृहपति के हाथों सम्पन्न करवाकर सांयकाल को गड्ढे को जल से पूर्ण भर देना चाहिए प्रात: काल देखने पर यदि जल उस गड्ढे में शेष रहे या फिर कीचड हो जाए तो उस भूखण्ड पर निवास करने वाले लोगों के मन में एकाग्रता, बुद्धिमत्ता, सकारात्मकता प्रायः बनी रहेगी अर्थात् परिवार के सदस्य परस्पर एकता, सकारात्मकता व समन्वय के साथ स्वस्थ जीवन जीते हैं। यदि उसमें दरारें पड जाए तो विचारों के आदान-प्रदान में तथा एकता भावना में परस्पर अस्थिरता तथा एक-दूसरे के प्रति द्वेष, कलह आदि की वृद्धि होने पर परिवार का नाश होना स्वाभाविक है।

मृत्तिका विधि से भू परीक्षा- भूखण्ड पर एक हाथ लम्बाई-चौडाई का गर्त्त खोदकर गड्ढे से निकली मिट्टी से पुन: गड्ढे को भरना चाहिए । यदि गड्ढा भरने के पश्चात् मिट्टी शेष बचे तो भूमि पर गृह निर्माण हेतु उत्तम, यदि पूरी मिट्टी पुनः गड्ढे में आ जाए तो भूमि सामान्य एवं उस मिट्टी से गड्ढा नहीं भरे कम पड़े तो वह भूमि अधम होती है अर्थात् उस पर गृहनिर्माण से बचना चाहिए यथा-

निखनेद हस्तमात्रेण पुनस्तेनैव पूरयेत्।

पांसुनाधिकमध्योना श्रेष्ठा मध्याधमा क्रमात्।। वि.क.प्र.1.61)

गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्रश्रम्।

यद्यूनमनिष्ट तत्समे सम धन्यमधिकं यत्॥ (वास्तुसौख्य)

स्वर विधि से भूमि परीक्षा -यदि प्रहार करने पर भूमि से गम्भीर स्वर उत्पन्न हो तो वह ठोस भूमि गृह निर्माण के लिए शुभ होती है । भूमि से उत्पन्न स्वर की तुलना मृदङ्ग, वल्लकी, वेणु, दुन्दुभी, हाथी, अश्व अथवा समुद्र के गर्जन के साथ की गई है यथा-

मृदङ्गरवल्लकीवेणुदुन्दुभीनां समा ध्वनौ ।

द्विपाश्वाब्धिसमस्वाना चेति स्युर्भूमय: शुभा: ॥ (स.सू.1.51)

स्पर्शपरीक्षा-जो भूमि ग्रीष्म काल में शीतल, शीत काल में उष्ण एवं वर्षा ऋतु में शीतोष्ण होती है, वह भूमि गृह-निर्माण के लिए प्रशस्त होती है यथा-

घर्मागमे हिमस्पर्शा या स्यादुष्णा हिमागमे।

प्रावृष्युष्णहिमस्पर्शा सा प्रशस्ता वसुन्धरा ॥(सम.सू. 1.50)

पुष्प विधि से भूमि परीक्षा-भूमि पर गर्त्त खोदकर उसमें श्वेत, रक्त, पीत एवं कृष्ण वर्ण के पुष्प रात्रि में डालें। प्रात:काल में जिस वर्ण का पुष्प सबसे अधिक ताजा दिखाई दे, उस वर्ण के मनुष्य के लिए यह भूमि प्रशस्त होती है। जैसा कि बृहत्संहिताकार ने वर्णन किया है यथा-

श्वश्रोषितं न कुसुम यस्मिन् प्रह्लायतेऽनुवर्णसमम् ।

तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन्मनो रमते ॥ (बृहत्संहिता)

सुवर्णताम्र पुष्पाणि श्वभ्रमध्यगतानि च।

यस्य नाम्नि समायान्ति सा भूमिस्तस्य शोभना।।(वि.क.प्र.1.68)

बीज विधि से भूमि परीक्षा- मत्स्यपुराण के अनुसार भूमि को जोतकर सभी प्रकार के बीजों का बीजारोपण करना चाहिए। बीज तीन दिन में उग जाएँ तो भूमि उत्तम, पाँच रात में उगें तो मध्यम एवं सात रात में उगें तो न्यून गुणवत्ता भूमि होती है। इनसे इतर भूमि सदैव त्याग देना चाहिए यथा-

त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि।

ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठा भूर्वर्जनीयतरा सदा॥ (म. पु. 252.18)

हलाकृष्टे तथोद्देशे सर्वबीजानि वापयेत्।।

त्रिपञ्च सप्त रात्राणि न प्ररोहन्ति तान्यपि।

उप्त बीजात्रिरात्रेण साङ्कुरा शोभना मही।।

मध्यमा पञ्चरात्रेण सप्तरात्रेण निन्दिता।।

तिलान्वा वापयेतत्तत्र यवान् अपि च सर्षपान्।

अथवा सर्वधान्यानि वापयेच्च समन्ततः।।

यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत्।।(वि.क.प्र.1.64-65)

3.18. **शल्यशोधन-** शिलान्यास से पूर्व सर्वप्रथम भूमि का शोधन एवं दिशा-निर्धारण करना नितान्त आवश्यक है। भूमि में जीवों की अस्थियाँ, कोयला, राख, केश और चमड़ा आदि हों तो उसे निकाल देना चाहिए लेकिन यदि भूमि के भीतर एक पुरुषमाप से अधिक नीचे हो तो उसका गृह पर अशुभ प्रभाव नहीं पड़ता है।

खाते यदाश्मा लभते हिरण्यं तथेष्टकायाञ्ष समृद्धिरत्र ।

द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ॥बृ.वा.मा.123)

भूमि में गड्ढा खोदने पर उसमें पत्थर एवं ईंट के साथ सोना प्राप्त हो तो वहाँ उस गृह में समृद्धि प्राप्त होती है। धातु प्राप्त होने पर वृद्धि तथा द्रव्य प्राप्त होने पर रमणीय सुख प्राप्त होते हैं।

पिपीलिकाः षोडशपक्षनिद्राः भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता।

तुषास्थिचीराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्पाः मरणप्रदाः स्युः॥ (बृ.वा मा.114)

गड्ढा खोदते समय यदि चीटियाँ या मेढ़क दिखें तो गृहकर्त्ता को उस भूमि पर गृह नहीं बनाना चाहिए। गड्ढे में भूसा, हड्डी चमड़ा, वस्त्र, राख, किसी जीव का अण्डा एवं सर्प दिखाई पड़े तो गृहस्वामी की मृत्यु होती है।

वराटिका दुःखदरिद्रदात्री कार्पास एवाति ददाति रोगम्।

काष्ठं प्रदग्धं यदि रोगवृद्धिः भवेत्कलिः खर्प्परलब्धकेन ।

लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य वास्तुं प्रदिशन्ति तज्ज्ञाः॥ (बृ.वा.मा.115)

गड्ढे से कौड़ी निकले तो दुःख व दरिद्रता प्रदान करती है। कपास निकले तो रोग एवं जला हुआ काष्ठ हो तो रोगवृद्धिकारक होता है। गड्ढे में खप्पर प्राप्त होने पर कलह व लोहा निकले तो गृहकर्त्ता की मृत्यु होती है। इस प्रकार निश्चय पूर्वक विचार करने के पश्चात् ही गृह का निर्माण कराना चाहिए।

भूमि को शल्यशोधन के पश्चात् झाड़ने, गाय के गोबर से लीपने, गोमूत्र एवं गङ्गाजल आदि पदार्थों से सींचने, भूमि के ऊपर की कुछ मिट्टी हटाने पर तथा गायों के वास करने से भूमि पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाती है-

सम्मार्जनोपाञ्नेन सेकेनोल्लेखनेन च।

गवां च परिवासेन भूमिः शुद्धयति पञ्चभिः।। (मनुस्मृति)

3.19. **तडागादि खनन योग-** तालाब, कुआँ, बावड़ी, खुदवाने का समय-सूर्य के नक्षत्र से 5, 7, 9, 12, 19, 26 नक्षत्रों में पृथ्वी शयन करती है, अतः इन नक्षत्रों में तालाब, कुआँ और बावड़ी आदि का खुदवाना निषिद्ध है। इनके अतिरिक्त शुभ है।

3.20. **जीवितादिभूमिज्ञान एवं फल-**

रुद्रयामलतन्त्र के अनुसार जीवित/समता/शून्य भूमि का लक्षण-भूमि के दीर्घ-विस्तार का योग कर उसमें ग्राम के अक्षरों को जोड़कर 4 से गुणा कर तथा उस संख्या में अपने नाम के अक्षर जोड़कर 3 का भाग देने के उपरान्त 1 शेष में जीवित भूमि, 2 में समता, 3 में शून्य भूमि समझना चाहिए। यथा-

व्यामविस्तारयोरैक्यं ग्रामाक्षरसमन्वितम्।
चतुर्गुणं नामयुक्तं शिवनेत्रेण भाजितम् ॥
एकेन भूमेर्जीवः स्याद् द्वाभ्यां च समता भवेत्।
शून्यशेषे तु शून्यं स्यादित्युक्तं रुद्रयामले ॥

प्रश्न से जीवितादि भूमिज्ञान- भूमि के नामाक्षर संख्या को 8 से गुणा करके तिथि और वार की संख्या को उसमें जोड़कर 3 का भाग देने से 1 शेष हो तो जीवित, 2 शेष हो तो सम और 3 शेष हो तो मृत भूमि समझना चाहिए और मृत भूमि पर मकान बनाने से बचना भी चाहिए।

3.21. **गृहनिर्माण एवं गृहजीर्णोद्धार में मास विचार-** जल या अग्नि द्वारा जीर्ण गृह का जीर्णोद्धार श्रावण, कार्तिक और माघ मास में करे तो गृहपति सुखी रहता है परन्तु अस्थायी गृह तृण या लकड़ी से गृह का निर्माण करने में मास शुद्धि का विचार करने की आवश्यकता नहीं है। चिरस्थायी गृहों का निर्माण उचित मास निर्णय के अनुसार ही करना चाहिए, ज्येष्ठ मास में पशु गृह, आश्विनमास में धान्य गृह, माघ मास में गौशाला एवं चैत्र में गंगा के तटवर्ती क्षेत्र में गृह का निर्माण करना शुभ है।

3.22 .**ईंटस्थापन ज्ञान**

मंगल के नक्षत्र से	5	3	3	5	7	5
गणनाफल	सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु

अन्य प्रकार से भूमि लक्षण - जिस भूमि पर वृक्ष उगे हों, फसल अच्छी होती हो, उस भूमि को जीवित कहते हैं, इसके अतिरिक्त मृत भूमि होती है। यथा-

यत्र वृक्षाः प्ररोहन्ति सस्यं हर्षात्प्रवर्द्धते।
सा भूमिर्जीविता वाच्या मृता चातोऽन्यथा भवेत् ॥ बृ.वा.101॥

भूमि चयन के पश्चात् वास्तुशास्त्र के निम्नलिखित मूल मानकों का विचार करना भी नितान्त आवश्यक है।

- **वास्तुपदविन्यास**- स्थापत्यकला की मुख्य परियोजना वास्तुयोजना।
- **दिक्साधन**- दिक्-निर्धारण।
- **मानप्रमाण निर्णय**- हस्त-अङ्गुली या आधुनिक साधनों द्वारा माप निर्धारण करना।
- **आयादि चिन्तन**- भवन के विस्तार तथा द्वारादि स्थापना के लिए आय, व्यय, अंश, ऋक्ष, योनि, वार, तिथि, ध्वजादि का विचार।
- **पताकादि विश्लेषण**- भवन स्वरूप को देखते ही भवन की स्थिति का आकलन।

सारांश - शिल्परत्न पूर्वभाग के तृतीय अध्याय में चार प्रकार की पूर्णा, सुपा, भद्रा, और धूम्रा भूमि का एवं विष्णु संहिता के द्वादश पटल में भी सुपद्या, भद्रिका, पूर्णा तथा धूम्रा भूमि का उल्लेख है, इसमें गुण के अनुसार उत्तमा, अधमा, और मध्यमा भूमि के भेद है। इसी प्रकार विश्वकर्मा ने भी उत्तमा, अधमा, और मध्यमा भूमि के भेद का उल्लेख करते हुए निर्देश दिया है कि भूकम्प से प्रभावित एवं अग्नि से दग्ध भूमि का परित्याग विशेष रूप से करना चाहिए।

इकाई -4 (दिग्विचार)

किसी भी भवन निर्माण के लिए प्रासाद, गृह, द्वार, आलिन्द एवं यज्ञादि निर्माण के समय दिक्साधन अवश्य करना चाहिए है। उचित दिशा साधन नहीं होने पर कुलनाश होता है। जैसा कि आचार्य वृद्धनारद के वचन हैं यथा-

प्रसादे सदने आलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषत:।

दिङ्मूढे कुलनाश: स्यात्तस्मात् संसाधयेद्दिश:॥ (बृ.वा.मा.दि.प्र.1)

किसी भी स्थान का भौगोलिक चिन्तन करने के बाद ही उस क्षेत्र का भौतिक निर्णय प्राप्त होता है। दिशा निर्णय उस स्थान के अक्षांश एवं रेखांश को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्रत्येक अक्षांश एक दिशा का प्रतीक होता है। अतः किसी स्थान का अक्षांश, भूमि पर उस स्थान की 'उत्तर-दक्षिण स्थिति' को और देशान्तर उस स्थान की 'पूर्व- पश्चिम स्थिति' का निर्धारण करता है। अब शंका उत्पन्न होती है कि पृथ्वी पर स्थित सभी स्थानों में दिशाएँ हैं। अत: किस दिशा का क्षेत्र किस अक्षांश के तुल्य है विषय गणित के द्वारा निर्धारित है। किस देश की स्थिति किस दिशा में है, इन्हीं के आधार पर स्पष्ट होता है। अतः इन्हीं दिशाओं के साधन हेतु प्राच्य एवं आधुनिक विधियों का प्रयोग हम करते हैं। सूर्यसिद्धान्तकार ने भी शङ्कु के माध्यम से छाया के प्रवेश तथा निर्गम स्थान से दिक्साधन का दिशानिर्देश दिया है। मत्स्याकार रेखा से विदिशाओं का प्रमाण भी प्राप्त हो जाता है।

4.1. दिक्साधन का मूलभूत वृत्त निर्माण-

अम्बुसंसिद्धे अर्थात् जल के द्वारा अच्छी तरह संशोधित कर समान शिलातल पर अर्थात् समतल भूमि पर, जल से साधित व शिलातल पर या जहाँ वज्रलेप किया है उस स्थल पर शङ्कु का निर्माण करना चाहिए।

शिलातलेऽम्बुसंसिद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।

तत्र शंकङ्गुलैरिष्टैस्समम्मण्डलमालिखेत्।।(सू. सि. त्रि.अ.1)

वृत्त के मध्य स्थित शङ्कु से पूर्वापर बिन्दोर्ज्ञान-

दिग्ज्ञान हेतु उपयुक्त भूतल पर कल्पित द्वादशाङ्गुल के मान से शङ्कु की स्थापना कर मण्डल के मध्य अर्थात् 12 अङ्गुल के अर्द्धव्यास से वृत्त बनाएँ। वृत्त में स्थित शङ्कोश्छायाग्र के अनुसार पूर्वाह्न में एवं अपराह्न में जहाँ वृत्त स्पर्श करे, वृत्तपरिधि में जिस भाग को स्पर्श करे तद्भागद्वये अर्थात् उस भाग में वृत्त की परिधि में पूर्वार्ध एवं अपरार्ध में दो बिन्दुओं की रचना करनी चाहिए। वहाँ पूर्वभाग में पूर्वबिन्दु,

पश्चिमभाग से अन्य बिन्दु एवं वृत्त में दो बिन्दू होते हैं। अर्थात् उन दोनों बिन्दुओं को पूर्व व पश्चिम बिन्दु के रूप में चिह्नित करना चाहिए। यथा सूर्यसिद्धान्त-

तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पितद्वादशाङ्गुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्तं पूर्वापराह्नयोः।।
तत्र बिन्दू विधातव्यौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।(सू. सि. त्रि.अ.2)

दिग्ज्ञान- उन दोनों बिन्दुओं के मध्य में तिमि (चापों द्वारा) पूर्वापरबिन्द्वोर्मध्ये अर्तात् पूर्व बिन्दु से पश्चिम बिन्दु तक त्रिज्या मानकर दोनों बिन्दुओं से क्रम से वृत्तार्थ के बराबर चाप खींचने से दोनों वृत्तार्धों से मत्स्य जैसी आकृति बनेगी। उस मत्स्य के मुख एवँ पूँछ को मिलाने से मत्स्य रेखा बनती है। उसके द्वारा दक्षिणोत्तर रेखा का निर्माण करें। वह याम्योत्तर रेखा अभीष्ट वृत्त में जहाँ दो स्थान पर स्पर्श करती है, वहाँ क्रमशः उत्तर और दक्षिण दिशा समझना चाहिए। पुनः उत्तर व दक्षिण दिग्बिन्दु से मत्स्यरेखा बनाकर वृत्त में पूर्व व पश्चिम दिशा का ज्ञान करना चाहिए। इन चारों दिशाओं के मध्य में भी मत्स्य रेखा से पूर्व व उत्तर के मध्य ईशान कोण या विदिशा, पूर्व व दक्षिण के मध्य आग्नेय कोण या विदिशा, पश्चिम एवं दक्षिण के मध्य नैर्ऋत्य कोण या विदिशा तथा पश्चिम व उत्तर के मध्य वायव्य कोण या विदिशाओँ जानना चाहिए। यथा-

तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा।।
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमे।
दिङ्मध्यमत्स्यैस्संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि।।(सू. सि. त्रि.अ.3-4)

उत्तरी ध्रुव - दिशा का ज्ञान तारे द्वारा भी किया जा सकता है । सप्तर्षि तारों में प्रथम दो तारों की संज्ञा मार्कटिका है। शङ्कुस्थापन के बाद रात्रि में जब मार्कटिका तारे, ध्रुव एवं शङ्कु का शीर्ष एक सीध में दिखाई दें तब शङ्कु के दक्षिण भाग में एक दीपक रखकर शङ्कु से दीपक की दिशा दक्षिण, ध्रुवतारे की दिशा उत्तर एवं उससे पूर्व तथा पश्चिम दिशा का निर्धारण करना चाहिए यथा-

तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे नते
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा ।
शङ्वोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छाया द्वयान्मत्स्थयो-
र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे ॥ (राजवल्लभ)

4.2. दिशा एवं दिशाधिपति- सामान्यतः हम पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण चार दिशाओं का व्यवहार में प्रयोग करते हैं। यथा जिस दिशा से सूर्योदय होता है, उसे पूर्व और अस्त होता है, उसे पश्चिम दिशा कहते हैं। अर्थात् पूर्व की ओर मुख करके खड़ा हो जाएँ तो दाईं ओर दक्षिण एवं बाईं तरफ उत्तर दिशा होगी। इन्हीं दिशाओं के साथ- साथ चार विदिशाएँ भी होती हैं। जिन्हें कोण भी कहा जाता है। जैसे पूर्व एवं दक्षिण के मध्य आग्नेय कोण, दक्षिण और पश्चिम के मध्य में नैर्ऋत्य कोण, पश्चिम- उत्तर दिशा के मध्य वायव्य कोण तथा उत्तर पूर्व के मध्य ईशान कोण होता है। इस प्रकार कुल आठ दिशाएँ होती हैं। यथा-

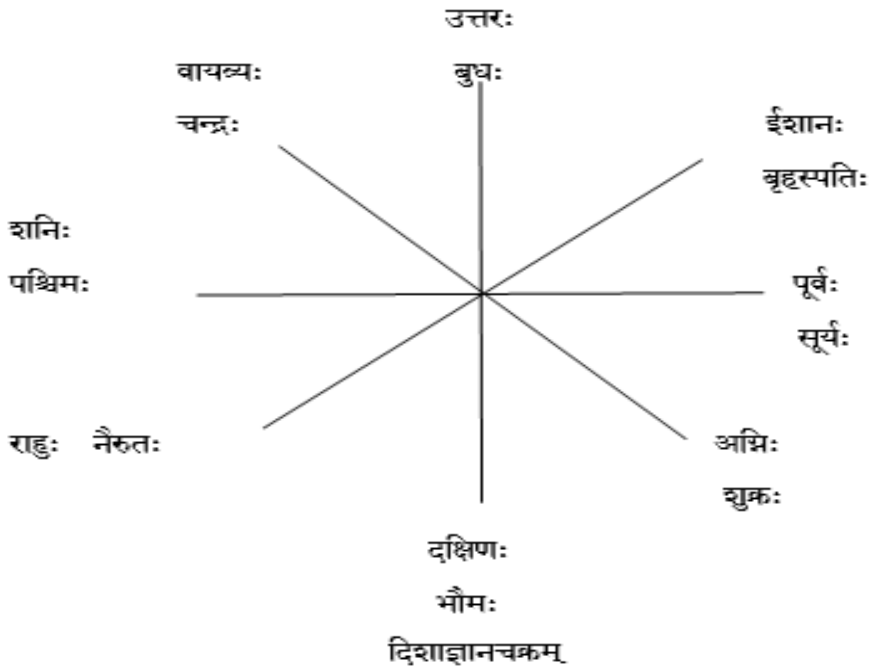

दिशाज्ञानचक्रम्

4.2. दिशाओं के स्वामी ग्रह-

प्राच्यादीशा रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतयः।

क्षीणेन्द्वर्कयमारा पापास्तैः संयुक्तः सौम्यः।। (ल.जा. ग्र. 4)

पूर्वादि आठ दिशाओं के स्वामी क्रमशः सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध एवं गुरु होते हैं।

ग्रह अ.	**सूर्य**	**शुक्र**	**मंगल**	**राहु**	**शनि**	**चन्द्र**	**बुध**	**गुरु**
दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

4.4. ग्रामवास विचार- अपनी नामराशि से 2,5,9,10 एवं11वीं राशि वाले ग्राम में निवास करने पर शुभ होता है। , 3,4, एवं 7वीं राशि मध्यम तथा 6,8,2 वीं राशि अशुभ होती है।

ग्रामवास चक्र-

दिशा	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
निषिद्ध राशि	वृष, मिथुन, सिंह, मकर	वृश्चिक	मीन	कन्या	कर्क	धनु	तुला	मेष	कुम्भ
वर्ग	-	अ	क	च	ट	त	प	य	श

4.5. **काकिणीविचार-** काकिणी विचार स्वामी और स्थान के सौभाग्य ज्ञान के लिए किया जाता है और सर्वप्रथम इसके लिए वर्गादि का विचार करना नितान्त आवश्यक है।

अ	**क**	**च**	**ट**	**त**	**प**	**य**	**श**
गरुड	मार्जार	सिंह	श्वान	**सर्प**	मूषक	मृग	मेष
पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

उपर्युक्त आठों वर्गों एवं दिशाओं के कृमशः स्वामी हैं। इन वर्गो के स्वामी अपने से पाँचवे के शत्रु होते हैं। यथा- गरुड़ सर्प का शत्रु है।

अर्थात् वर्ग का सम्बन्ध नाम के प्रथमाक्षर से है। नाम के पहले अक्षर के आधार पर आठ वर्गों के स्वामी व दिशाएँ भिन्न-भिन्न हैं। जैसा कि वृहद्वास्तुमाला में इसका वर्णन है -

वर्गाष्टकस्य पतयो गरुडो विडाल:।
सिंहस्तथैव शुनकोरग-मूषकैणा :॥
मेष: क्रमेण गदिता: खलु पूर्वतो5पि।
य: पञ्चम: स रिपुरेव बुधैर्विवर्ज्य:॥ (बृ. वा. मा1.17)

वर्गाष्टकबोधकचक्र -

व. सं.	1	2	3	4	5	6	7	8
वर्ग	अ	क	च	ट	त	प	य	श
दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
वर्ग स्वामी	गरुड	मार्जार	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	मृग	मेष
वर्ग अक्षर	अ,इ,उ,ऋ, ए,ऐ,ओ,औ, अं, अः	क,ख,ग,घ, ङ	च,छ,ज,झ, ञ	ट,ठ,ड,ढ,ण	त,थ,द,ध,न	प,फ,ब,भ,म	य,र,ल, व	श,ष,स, ह

उपर्युक्त चक्र के अनुसार प्रत्येक वर्ग के स्वामी अपने से पाँचवे के शत्रु होते हैं। अतः अपने वर्ग से पाँचवें

वर्ग की दिशा में गृह का निर्माण नहीं करना चाहिए। यथा- मार्जार मूषक का शत्रु है।

इसी प्रकार उपर्युक्त चक्र में से स्वयं और अपने स्थान के नाम के प्रथमाक्षर से वर्गानुसार निर्णय कर सकते हैं।

काकिणी विचार- अपने-अपने वर्गसंख्या को दोगुना करके उसमें दूसरे की वर्गसंख्या को जोड़कर उसके योगफल में आठ से भाग कर जो संख्या शेष प्राप्त हो, उसी को काकिणी कहते हैं। इस प्रकार स्थानादि के नाम की काकिणियों का विचार करके स्वामी और स्थान में से जिसकी संख्या अधिक हो वह दूसरे का ऋणी होता है। अर्थात् स्थान की काकिणी से स्वामी की कम व समान हो तो उस स्थान पर निवास करना शुभ होता है। यथा-

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।

अष्टभिस्तु हरेद्भागं यो -अधिक: स ऋणी भवेत्॥ (बृ. वा.मा.1.18)

यथा- जैसे कि किसी व्यक्ति का नाम योगेश है और उन्हें उज्जैन के साथ काकिणी विचार करना है - नामाक्षर - (य) इस प्रकार वर्गांक – 7, स्थान का नामाक्षर - (उ) इस प्रकार वर्गांक – 1 है। सर्वप्रथम योगेश की काकिणी विचार करते हैं - वर्गाक्षर को दोगुना करने पर – 14, पुनः इसमें स्थान का वर्गाक्षर जोड़ेंगे तो (14+1 =5) इसको 8 से विभाजित करेंगे तो - 15/8 – 7 शेष रहा।

स्थान की काकिणी - स्थान के वर्गांक को दोगुना किया – 2 पुनः योगेश के वर्गांक में जोड़ेंगे तो - 2+14 =16 इसे 8 से विभाजित करेंगे तो - 16/8 - 0 (शेष) अतः योगेश की काकिणी उज्जैन से ज्यादा है। अतः योगेश उज्जैन के लिए ऋणी है। अर्थात् इन दोनों काकिणियों में जिसकी काकिणी अधिक होती है, वह ऋणी होता है।

4.6. दिशानुसार शुभाशुभ वृक्ष ज्ञान- आवासीय वास्तु में वृक्षविन्यास में कुछ वृक्षों को शुभ तथा कुछ को अशुभ भी माना जाता है। अतः अशुभ वृक्षों का गृह वास्तु में निषेध भी किया गया है। यद्यपि कुछ वृक्षों की शुभाशुभ दिशाओं का निर्देश दिया गया है।

प्लक्ष, वट, उदुम्बर एवं अश्वत्थ वृक्ष क्रम से भवन के दक्षिण आदि दिशाओं में अशुभ और उत्तर आदि दिशाओं में शुभ होते हैं। अर्थात् दक्षिण में प्लक्ष (पाखर वृक्ष), पश्चिम में वट वृक्ष, उत्तर में उदुम्बर वृक्ष (गूलर) तथा पूर्व में अश्वत्थ (पीपल वृक्ष) अशुभ होते हैं लेकिन ये उत्तर में प्लक्ष वृक्ष, पूर्व में वट वृक्ष, दक्षिण में उदुम्बर वृक्ष तथा पश्चिम में पीपल वृक्ष शुभ होते हैं। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर का वचन है यथा-

याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते।

उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः॥ बृ.वा.मा.1.12।।

क्षीरवाले वृक्ष (दूधवाले वृक्ष), वट, अश्वत्थ, रक्तपुष्प वाले वृक्ष, कांटेवाले वृक्ष, शाल्मली (सेमर), प्लक्ष, तथा उदुम्बर अग्निकोण में अशुभ एवं पीडादायक होते हैं। दक्षिण दिशा में कुछ विशिष्ट वृक्षों को छोड़कर प्रायः सभी वृक्ष अशुभ होते हैं।

पनस (कटहल) का वृक्ष सभी दिशाओं में शुभ होता है। आश्रम में नारियल शुभ, गृहस्थों के लिए सभी दिशाओं में धन प्रदायक, शिविर के ईशान कोण एवं पूर्व में पुत्रप्रद होता है।अर्थात् नारिकेल सर्वत्र सुखप्रद तथा मनोहर होता है। रसाल (आम्र) वृक्ष सर्वत्र शुभद होता है लेकिन यदि पूर्व दिशा में आम्र का वृक्ष हो तो राजाओं लिए सम्पत्ति प्रदायक होता है। बिल्व, पनस, जम्बीर, बदरी को सर्वत्र शुभ होता है परन्तु विशेष रूप से पूर्व दिशा में वृक्षारोपण करने से सन्तति वृद्धि होती है और दक्षिण में धन की वृद्धि कराता है।

आश्रमे नारिकेलश्च गृहिणाञ्च धनप्रदः।
शिविरस्य यदीशाने पूर्वे पुत्रप्रदस्तरुः।
सर्वत्र मंगलार्हश्च तरुराजो मनोहरः॥
रसालवृक्षः पूर्वस्मिन् नृणां सम्पत्प्रदस्तथा।
शुभप्रदश्चसर्वत्र सुरकारो निशामय
विल्वश्च पनसश्चैव जम्बीरो बदरी तथा।
प्रजाप्रदश्च पूर्वस्मिन् दक्षिणे धनदस्तथा॥ (बृ. सं. वा. अ.83)

कुश और काश से युक्त भूमि में वास करने पर ब्रह्मतेज से युक्त सन्तति उत्पन्न होती है। अर्थात् जिस भूमि में दूर्वा की अधिकता हो उसमें वीरसन्तति उत्पन्न होती है। उसी प्रकार फलों से सम्पन्न भूमि में गृह निर्माण करने से धन तथा पुत्रों की प्राप्ति होती है। अतः वृक्षारोपण में शुभाशुभ का विचार अवश्य करना चाहिए। जो शुभ हों उन्हीं वृक्षों का रोपण करना चाहिए।

4.7. भूमि का प्लवभूमि विचार- प्लव शब्द का अर्थ है ढलान अर्थात् भूमि की विभिन्न दिशाओं एवं विदिशाओं में ऊँचाई एवं नीचाई के अनुसार उसके शुभाशुभ का विचार करना ही प्लव विचार है। ईशान, पूर्व और उत्तर दिशा में ढलान हो तो वह भूमि पुत्रप्रद, धनप्रद और शुभ होती है। क्योंकि इन दिशाओं में सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक होता है।

4.8. प्लवभूमि का फल-

श्रियं दाहं तथा मृत्युः धनहानिं सुतक्षयम्,
प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च।

विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही

मध्यपल्वता मही नेष्ठा न शुभा प्लवत्परा।। बृ.वा.मा.35-36।।

ईशान कोण- (उत्तर पूर्व) दिशा की ओर प्लव हर प्रकार की उन्नति और उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करता है। यदि यह स्थान ऊँचा हो तो धनहानि, व्याधि एवं दुःख देने वाला होगा।

ईशानकोण में विद्यालाभ

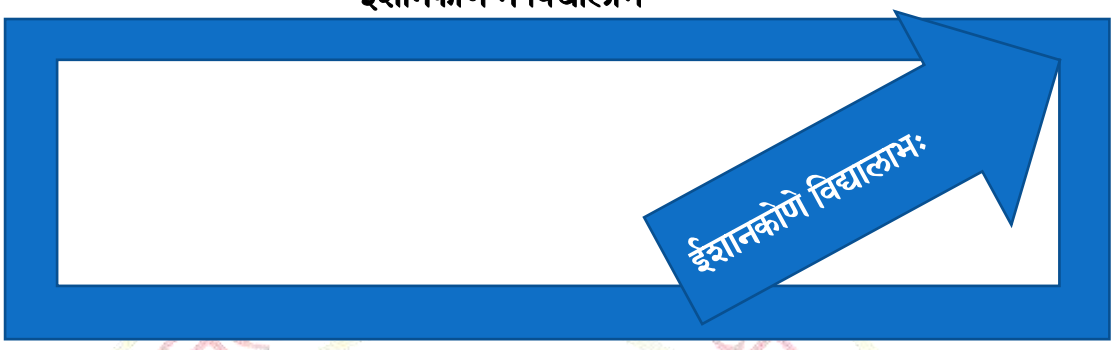

पूर्व दिशा- पूर्व दिशा की ओर ढलान स्वास्थ्य, धन, यश और सभी प्रकार की सफलता प्रदान करता है लेकिन पूर्व दिशा में ऊँची भूमि अपयश, असफलताएँ एवं संतान को किंकर्तव्य विमूढ करनेवाली होती है।

पूर्वदिशा में श्रीवृद्धि

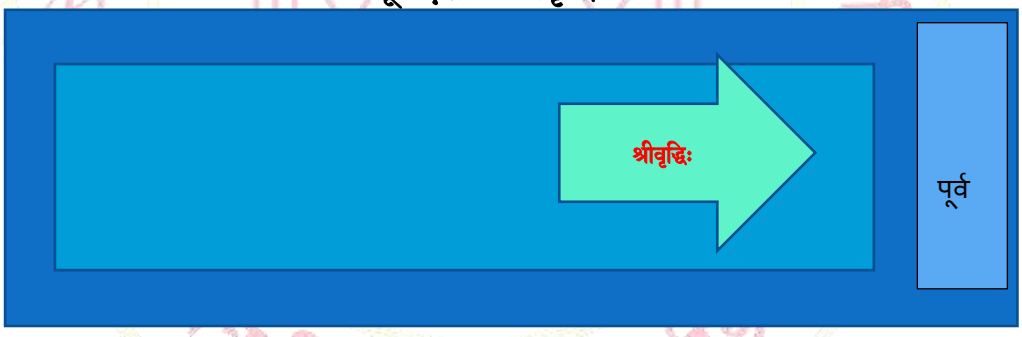

आग्नेय कोण- आग्नेय कोण (पूर्व-दक्षिण) में ढलान हो तो चोरी अग्निभय और लडाई-झगडे की आशंका सदैव बनी रहती है लेकिन आग्नेय कोण यदि सबसे नीचा हो तो अशुभ प्रभावों में वृद्धि हो सकती है।

आग्नेयकोण में दाह

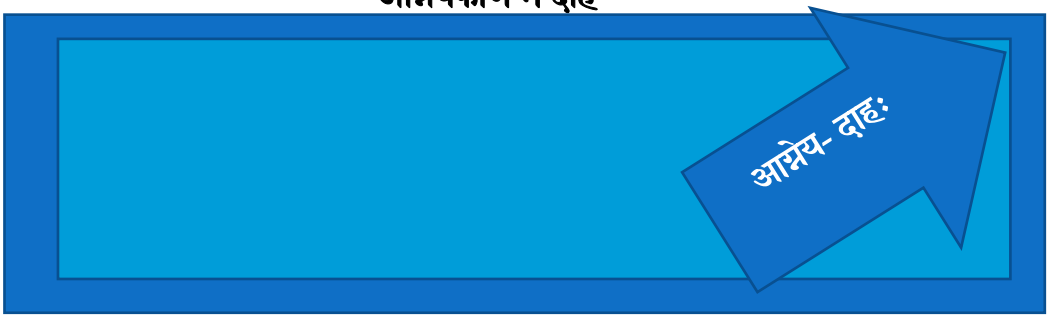

दक्षिण दिशा- दक्षिण दिशा में ढलान वाली भूखण्ड पर रोग, मृत्यु, धनहानि और मानसिक परेशानियाँ बनी रहती है परन्तु इस दिशा में भूमि ऊँची हो तो धनवृद्धि, सुख शान्ति, सफलता एवं यश प्राप्त होता है।

दक्षिणदिशा में मृत्यु

नैऋत्य कोण- (दक्षिण पश्चिम) की दिशा में भूमि का प्लव हो तो पारिवारिक कष्ट एवं सन्तति कष्ट लेकिन इस दिशा में ऊँची भूमि पर सर्व सुख एवं समृद्धि प्राप्त होती है।

पश्चिम दिशा- इस दिशा में ढलान वाला भूखण्ड धन हानि तथा रोगप्रद होता है। परन्तु इस दिशा में ऊँचा हो तो सफलता, यश और समृद्धि अवश्य प्राप्त होती है।

पश्चिमदिशा में पुत्रक्षय

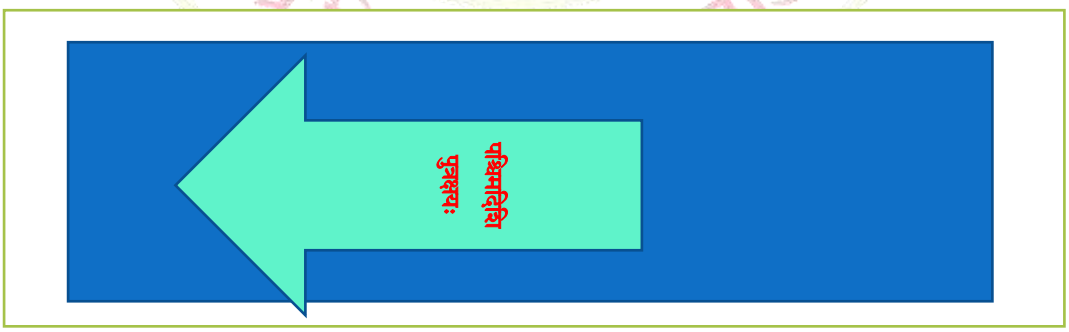

वायव्य कोण- (पश्चिम- उत्तर) भूखण्ड में ढलान होने पर अस्थिरता, प्रवास एवं धनहानि बनी रहती है।

2. बृहद् वस्तुमाला-1/35, 39

वायव्यकोण में प्रवास

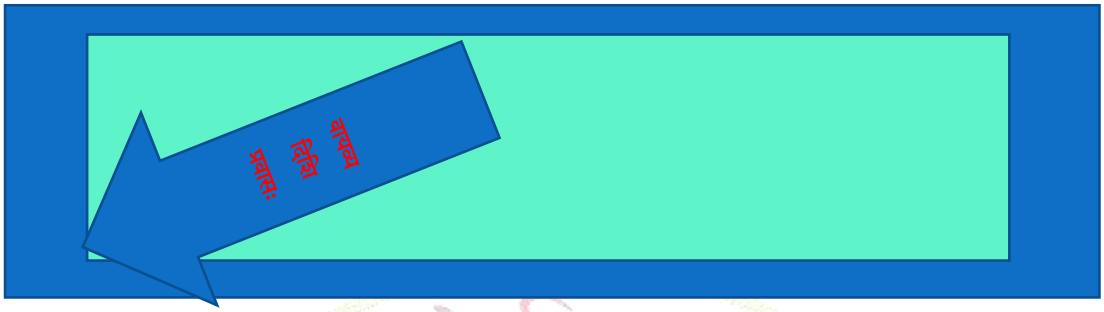

उत्तर दिशा- भूखण्ड में ढलान होने पर धनलाभ तथा उन्नति होती है।

उत्तरदिशि धनलाभः

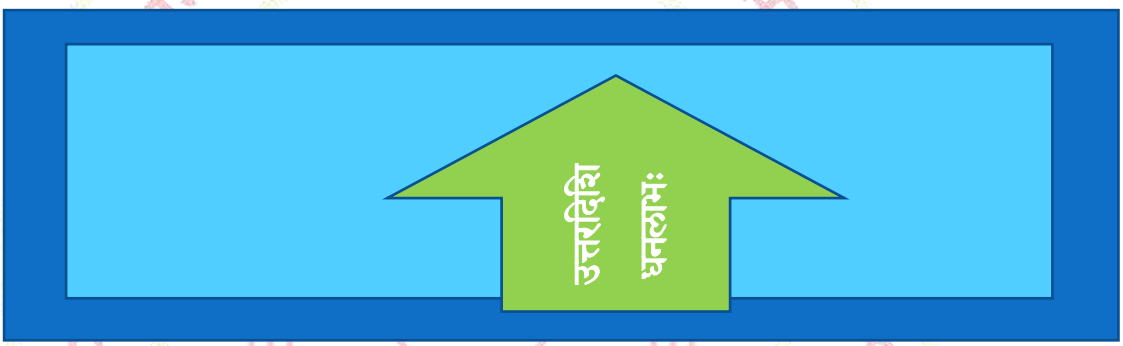

भवन के कक्षों के तल को समतल करते समय और छत पर पानी की टंकी के रखने के समय ढलान का अवश्य विचार करना चाहिए।

ध्रुव के अनुसार भूमि- उत्तर और ईशान कोण के मध्य में नीची, तथा नैर्ऋत्य व दक्षिण दिशा के मध्य में ऊँची भूमि को दीर्घायुवास्तु कहते हैं। यह प्रशस्त और वंश की वृद्धि करानेवाली होती है। पूर्व-ईशान कोण के मध्य में नीची भूमि एवं नैर्ऋत्य तथा पश्चिम के मध्य में ऊँची भूमि पुण्यवास्तु होती है। यह भूमि सभी वर्णों के लिए उत्तम होती है यथा-

सोमेशानन्तरं नीचमुच्चं निर्ऋतिकालयोः।
दीर्घायुर्नाम तद्वास्तु प्रशस्तं कुलवर्धनम्।।
ईशानेन्द्रान्तरं नीचमुच्चं वरुणरक्षयोः।
पुण्यकं नाम तद्वास्तु द्विजानां च शुभावहम्।।बृ.वा.मा.49-50।।

इकाई- 4 (शिलान्यास)

वास्तुराजवल्लभ में भूमिपूजन विधि-भूमि की परीक्षा तथा भूमि को शुद्ध कर श्रीगणेश तथा भगवती दुर्गा की पूजा के उपरान्त क्षेत्रपाल तथा आठों दिक्पालों की फल, धूप, बलि आदि से पूजा करनी चाहिए। यथा-

परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं समर्चयेच्चण्डिकया समेतम्।

क्षेत्राधिपं चाष्टदिगीशदेवान् पुष्पैश्च धूपैर्बलिभिः सुखाय।। बृ.वा.मा.116।।

ईंटस्थापन ज्ञान- गृहनिर्माण में ईंटों का विचार- विजया, मङ्गला, निर्मला, सुखदा ये चार प्रकार की ईंटें गृह तथा जलाशय के निर्माण शास्त्रों में उल्लेख हैं। यथा- 15 अंगुल विजया, 17 अंगुल मंगला, 12 अंगुल निर्मला, 23 अंगुल सुखदा का प्रमाण गर्गादि मुनियों के मत से आदि प्रमाण है।

इष्टकाचक्र-

पञ्चत्रीणि त्रिकं पञ्च सप्त पञ्चावनीयभात् ।

सौख्यं मृत्यु क्रमेणैव इष्टकारम्भकर्मसु ॥ बृ.वा.मा.122॥

मंगल के नक्षत्र से गणना	5	3	3	5	7	5
क्रम	सौख्य	मृत्यु	मृत्यु	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु

उपर्युक्त चक्र से मंगल के नक्षत्र से ईंट रखने के दिन नक्षत्र तक का फल ज्ञात कर सकते हैं-

5.1.भूमिपूजन- भूमि चयन के पश्चात् भवन का निर्माण करते समय शिलान्यास से पूर्व पवित्रीकरण, आचमन, शिखाबन्धन, प्राणायाम, न्यास, सङ्कल्प, गणेशादि देवता ध्यान एवं पूजन, स्वस्तिवाचन, भूमि के दिक्पालादि का पूजन, क्षमा प्रार्थना, जयघोष और विसर्जन सहित भूमिपूजन करना चाहिए यथा-

स्वस्तिवाचकघोषेण जयशब्दादिङ्गलैः।

अपक्रामन्तु भूतानि देवताश्च सराक्षसाः।।(मयमतम् 4.2)

ब्राह्मणैश्च यथाशक्त्या वाचयेत् स्वस्तिवाचकम्।

वस्तुमध्ये ततस्तिन् खानयेद् वसुधातलम्।।(मयमतम् 4.10)

सभी पदार्थों से युक्त गर्भ (भवन की नींव का गर्त) सम्पदा का स्थल होता है। अतः समस्त पदार्थों के सहित गर्भन्यास करें, द्रव्यों के नहीं होने से वह गर्भ सभी प्रकार की विपत्तियों का कारण (उस पर निर्मित भवन एवं भवन के निवासियों के लिए) बनता है।

सर्वद्रव्यैस्तु सम्पन्न गर्भ तत् सम्पदां पदम् ।

द्रव्यहीनमसम्पन्न गर्भ सर्वविपत्करम् ॥(मयमतम् 12.2)

अतः प्रयत्नपूर्वक गर्भ का न्यास करें। गर्भ के गर्त की गहराई को अधिष्ठान की ऊँचाई तक अवश्य समतल कर लेना चाहिए। यथा-

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गर्भं सम्यग् विनिक्षिपेत्।
गर्भश्चभ्रस्य गाम्भीर्यं स्वाधिष्ठानोन्नते समम् ॥ (मयमतम् 12.3)

गर्त को ईटों एवं पत्थरों से सम एवं चौकोर करना चाहिए। पानी से पूर्ण भरने के बाद इसके मूल में सभी प्रकार की मिट्टियाँ भी डालनी चाहिए यथा-

निम्नगाह्रदसस्याद्रिवल्मीककुलिरावटे
हलस्थलाब्धिगो शृङ्ग हस्तिदन्तेषु मृत्तिका॥ (मयमतम् 12.5)

यह मृत्तिका नदी, तालाब, अन्न के खेत, पर्वत, बॉबी, हल, बैल के सींग एवं गजदन्त से प्राप्त होती है।

तदूर्ध्वं तस्य मध्ये तु पद्मकन्दं न्यसेत् पुनः।
पूर्वे चोत्पलकन्दं च दक्षिणे कौमुदं क्षिपेत् ॥ (मयमतम् 12.6)

उसके ऊपर गर्त के मध्य में पद्म (लाल कमल) की जड़, पूर्व दिशा में उत्पल (नीलकमल) की जड़ एवं दक्षिण में कुमुद (की जड़) डालनी चाहिए।

सौगन्धिं पश्चिमे विद्यात् नीललोहमुदग्दिशि।
धान्यान्यष्टौ तदूर्ध्वं तु शालिर्व्राहिश्च कोद्रवः॥
कङ्गु मुद्गं च माषं च कुलत्थं च तिलं तथा।
प्रादक्षिण्येन शाल्यादीनीशानादिषु विन्यसेत् ॥ (मयमतम् 12.7-8)

पश्चिम दिशा में सौगन्धि (एक प्रकार की सुगन्धित घास), उत्तर दिशा में नील- लोह (नीले या काले रंग का धातु) डालना चाहिए। उनके ऊपर आठो दिशाओं में आठ धान्यशालि, व्रीहि (चावल), कोद्रव (कोदो), कङ्कु, मुद्ग (मूंग), माष (उड़द), कुलत्थ (कुलथा) एवं तिल को प्रदक्षिण- क्रम से ईशान से प्रारम्भ करते हुए गर्त में रखना चाहिए।

तस्योपरि निधातव्यं मञ्जूषं ताम्रनिर्मितम्।
त्रिचतुर्मात्रविस्तारात् द्विद्वयङ्गुलविवर्धनात् ॥
पञ्चषड्विंशमात्रान्तं मानं द्वादश भाजने।
समोच्चं वाऽष्टषड्भागोनं वा तदुच्छ्रयम् ॥ (मयमतम् 12.9-10)

पेटी- उसके ऊपर ताँबे से निर्मित मञ्जूषा अर्थात् पात्र रखना चाहिए। प्रमाण की दृष्टि से यह पात्र चौड़ाई में तीन या चार अंगुल से प्रारम्भ करते हुए दो-दो अंगुल की वृद्धि के साथ पच्चीस-छब्बीस अंगुलपर्यन्त बारह प्रकार का होता है। इसकी ऊँचाई-चौड़ाई के बराबर अथवा आठ, छः या पाँच भाग कम रखें।

एकादिद्वादशान्तानां हर्ष्याणामुदितं क्रमात्।

गृहीतोच्चत्रिभागैकं पादालम्बिविधानकम् ॥ (मयमतम् 12.11)

उपर्युक्त माप एक से बारह तलपर्यन्त भवनों के क्रमानुसार वर्णित है अथवा पादलम्ब (स्तम्भ) के विधान के अनुसार गृह की ऊँचाई के तीसरे भाग के प्रमाण को ग्रहण करना चाहिए।

5.2. **शिलान्यास हेतु वस्तुएँ-**

श्वनोर्ध्वभूतलं सर्वं गन्धैः पुष्पैश्च दीपकैः

वासयित्वा तु पूर्वेद्युः पञ्चगव्यैस्तु भाजनम्।

प्रक्षाल्य सुत्रैरावेष्ट्य शुद्धशाल्यास्तरे शुभे ॥ (मयमतम् 12.15-16)

नींव में वास्तु-पूजन की सामग्री रखना-जिस दिन गर्भस्थापन का विधान करना हो, उसके एक दिन पूर्व गर्त के ऊपर की (आस-पास की) भूमि को सभी प्रकार के गन्धों से शुशोभित कर पुष्पों तथा दीपकों से सुसज्जित करें। मञ्जूषापात्र को पञ्चगव्य (गाय का दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर) से स्वच्छ कर उस पर सूत्र लगाएँ। इसके पश्चात् भूमि पर शुद्ध शालि का धान बिछाकर नाग पूजन, पञ्च ईंट पूजन, मिस्त्री के अस्त्र पूजन, वास्तुदेव पूजन, गणेश पूजन और स्थलपूजन का पूजन करें।

स्थण्डिले चण्डितं कृत्वा मण्डूकं वाऽथ तत्परम् ।

विन्यस्य देवान् ब्रह्मादीन् घेततण्डुलधारया ॥ (मयमतम् 12.17)

उस शालि के आस्तरण पर चण्डित अगवा मण्डूक वास्तुपद का विन्यास कर श्वेत तण्डुल की धारा के द्वारा ब्रह्मा आदि वास्तुदेवों का पदविन्यास करना चाहिए।

आराध्य गन्यपुष्पाद्यैर्भुवनाधिपतिं जपेत्।

स्थपतिः कलशान् न्यस्य सर्वान् वस्त्रविभूषितान् ॥ (मयमतम् 12.18)

5.3. **भूमिपूजाविधि-** प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करने में "शुभ समय" का विशेष महत्त्व होता है। यदि उचित समय पर बीजारोपण किया जाए, तो कृषि भी उन्नत एवं पैदावार अधिक होती है। समय पर बीजारोपण न करने पर पैदावार भी न्यूनतम होने की सम्भावना रहती है। अतः भवन निर्माण भी समय सापेक्ष अनिवार्य माना जाता है। यदि शुभ समय पर भवन निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाए तो भवन का निर्माण निर्विघ्न समाप्त होगा, अशुभ समय में प्रारम्भ प्रक्रिया से पग-पग पर विघ्न-बाधाओं के चलते भवन निर्माण की सम्भावना

सन्देहास्पद ही रहेगी। ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र के अनुसार शुभ-समय का चयन करना ही "मुहूर्त" कहलाता है। मुहूर्त पंचांग शुद्धि एवं लग्नादि के आधार पर निश्चित होता है। कार्य की प्रवृत्ति, देश-काल का सम्यक् बोध करके ही, आचार्यों ने मुहूर्त्तों के लिए शास्त्रों में निर्देश दिए हैं। "गृहवास्तु" में भूमि पूजन से प्रारम्भ कर गृह-प्रवेश पर्यन्त तक के विविध कृत्यों में "मुहूर्त्तों' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि मयमत में उल्लेख है कि बुद्धिजीवियों के द्वारा प्रदत्त शुभ करण, शुभ लग्न और मुहूर्त्त में अक्षत तथा श्वेत पुष्पों से वास्तुदेवों का पूजन करें यथा-

करणे च सुलग्ने च मुहूर्त्ते च बुधेप्सिते।

अक्षतैः श्वेतपुष्पैश्च बलिकर्म विधीयते।।(मयमतम् 4.9)

5.4. **भूमि पूजन मुहूर्त विचार-** गृहारम्भ में सर्वप्रथम भूमि पूजन होता है। भूमि पूजन में शिलान्यास से पूर्व नींव के लिए खुदाई का कार्य होता है। तत्पश्चात् शिलान्यास किया जाता है।

5.5. **शिलान्यास-** शिलान्यास में नींव में प्रथम शिला स्थापित करके भवन की नींव भरी जाती है।भूमि पूजन हेतु मुहूर्त्त के लिए मास शुद्धि, पक्ष शुद्धि, पचाङ्ग शुद्धि एवं लग्न का विचार विशेष रूप से किया जाता है किन्तु इन सबका का विचार करने के पूर्व भूमि की शयनावस्था का विचार अवश्य करना चाहिए। भूमि शयन में भूमि पूजन न करके जाग्रत भूमि में ही भूमि पूजन करना श्रेष्ठ होता है। यथा -

प्रद्योतनात्पंचागांकसूर्यनवेन्दुषड्विंशतिमितेषु भेषु।

शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापी खननं न शस्तम्॥'

अर्थात् सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक (जिस दिन भूमि-पूजन अभीष्ट हो) 5, 7, 9, 12, 19 एवं 26वाँ नक्षत्र हो तो, भूमि खनन अर्थात् नींव खोदने का कार्य नहीं करना चाहिए।

मतान्तर से सूर्य संक्रान्ति के दिन से 5, 7, 9, 11, 15, 20, 22, 23 एवं 28वें दिन भूमि शयन होता है। इसको ध्यान में रखकर ही भूमि पूजन के मुहूर्त्त निर्णय करना चाहिए । अन्य विचारणीय विषय निम्न प्रकार हैं -

1. गुरु-शुक्र तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर भूमि पूजन नहीं होता।
2. रविवार एवं मंगलवार भूमि खनन में वर्जित हैं।
3. रिक्ता (4, 7, 9, 14) एवं अमावस्या तिथि त्याज्य हैं।

शिलान्यास (प्रथम इष्टिका न्यास) सर्वदा अग्निकोण में ही करना चाहिए। खात (खनन) का प्रारम्भ तो किसी विदिशा (कोण) में हो सकता है, किन्तु शिलान्यास सदैव अग्निकोण में ही किए जाने का बहुसम्मत मत शास्त्रों में उपलब्ध है। यथा -

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमम्।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैव प्रतिस्थाप्या बृ.बा.

शारंगधर मत -

प्रासादेषु हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा।
आग्नेय्यां प्रथमं स्थापयेत्तद्विधानतः॥

कश्यप ऋषि का मत -

सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तम्भस्यारोपणं तथा।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः।।

अग्निकोण में शिलान्यास करके ताम्र कलश की स्थापना करनी चाहिए। ताम्रपात्र (कलश) में तीर्थों की मिट्टी, ईट, स्वर्ण, पंचरत्न, सप्तधान्य, शैवाल (काई) रख कर अग्निकोण में खुदे हुए गड्ढे में स्थापित करना अभीष्ट होता है। वह भवन निर्माण के समय का खातपात्र होता है। यथा -

मृदिष्टिका स्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुतम्।
ताम्रपात्रस्थितं सर्वं खातमध्ये नियोजयेत्।

वास्तुपुरुष की स्थिति का निर्णय करने के लिए गृहारम्भ की तिथि संख्या में 4 युक्त करके द्विगुणा करें उसमें गृहस्वामी के नामाक्षर संख्या को जोड़कर 3 का भाग दें। यदि 1 शेष बचे तो स्वर्ग में, 2 शेष बचे तो पाताल में तथा शून्य बचे तो मृत्युलोक में वास्तुपुरुष का निवास होता है। ऐसा पराशर ऋषि ने कहा है। स्वर्गलोक में वास्तुपुरुष का निवास हो तो लाभ, पाताल में वास्तुपुरुष हो तो निरन्तर लक्ष्मी प्राप्ति और मृत्युलोक में वास्तुपुरुष का वास मृत्युकारक होता है।

सवेदास्तिथयोद्विघ्ना नामाक्षर समन्वितः ।
त्रिभिश्चैव हरेद्भागं शेषः पुरुष उच्यते ।।
एके च वसतिः स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च।
शून्ये तु मृत्युलोके स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत्।।
स्वर्गेवासे भवेल्लाभः पातालेषु श्रियः सदा।
मृत्युलोके भवेन्मृत्युर्विचिन्त्य गृहमारभेत्।। वास्तुमुक्तावली 134-136

विश्वकर्माप्रकाश में कहा गया है कि **ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत्।** लल्ल का मत है "त्यजेद्देश शिरोभागे" इत्यादि और सबका सम्मान भी देश परत्वेन है-अधिकांश राहु पृष्ठ भाग में शिलान्यास किया जाता है।

शिलान्यास विधि- भूखण्ड के मध्य और ईशान आदि चारों दिशाओं में एक- एक शिल्यान्यास हेतु गड्ढा खोदना चाहिए लेकिन एक ही स्थान पर शिलान्यास करना हो तो भूखण्ड के मध्य में एक गड्ढा खोदें।

नन्दा शिला पर कमल के पुष्प का चिह्न, भद्रा शिला पर सिंहासन , जया पर धनुषाकार द्वार का छत्र, रिक्ता पर कछुआ और पूर्णा शिला पर चतुर्भज विष्णु का चिह्न अंकित करें। यथा-

नन्दायां पद्मालिख्य भद्रा सिंहासनं तथा।

पूर्णायाश्च चतुर्बाहुं विष्णुं संल्लेखयेद् बुधः।। (वि. प्र. 209-210)

ईशान में नन्दा शिला, आग्नेय में भद्रा शिला, नैर्ऋत्य में जयाशिला, वायव्य में कोण में रिक्ता शिला एवं केन्द्र में पूर्ण शिला की स्थापना करनी चाहिए। इन शिलाओं पर यह चित्र बनाकर तथा ओम् भुः भुवः स्वः का उच्चारण करके दिशाओं के लिए पाँचों देवों का आवाहन करना चाहिए।

तत्परम निम्न प्रकार से शिलाओं को स्नान कराना चाहिए-

मृतिका स्नान- ॐअग्निर्म्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपाᳬ रेताᳬसि जिन्वति॥ य.वे.3.12॥

जल स्थान- ॐयज्ञायज्ञा वोऽअग्नये गिरागिरा च दक्षसे।प्रप्र वयममृतञ्जातवेदसम्प्रियम्मित्रन्न शᳬसिषम्॥ य.वे.27.42॥

पञ्चपल्लव के जल से स्नान- ॐअश्श्वत्थे वो निषदनम्पूर्णे वो व्वसतिष्कृता। गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥ य.वे.12.79॥

गोमूत्र से स्नान- ॐभूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्ग्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्॥ य.वे.36.3॥

गोबर से स्नान- ॐ गन्धद्वारां दुराघर्षं नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ तै.आ.10.1.10

दुग्ध से स्नान- ॐआप्प्यायस्व मदिन्तम सोम व्विश्श्वेभिरᳬशुभिः। भवानः सप्रथस्त्तमः सखा व्वृधे॥ य.वे.12.114॥

दधि से स्नान- ॐदधिक्क्राव्णोऽअकारिपञ्जिष्णोरश्श्वस्य व्वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रणऽआयूᳬपि तारिषत्॥ य.वे.23.32॥

मधु स्नान-ॐमधु व्वाताऽ ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माद्ध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः॥ य.वे.13.27॥

पञ्चगव्य स्नान- पयः पृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयो दिव्व्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥ 18.36॥

कुश जल से स्नान- ॐदेवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्श्विनोर्ब्बाहुब्भ्याम्पूष्णो हस्ताब्भ्याम्। अग्नये जुष्टङ्गृह्णाम्यग्नीषोमाब्भ्याञ्जुष्टं गृह्णामि॥ य.वे.1.10॥

दूर्वाजल से स्नान-ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ यजुर्वेद13.20॥

सुगन्ध एवं पञ्चगव्य से स्नान- ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ तै.आ.10.1.10

सर्वौषधि से स्नान- ॐया ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा। मनै नु बभ्रूणामहः शतन्धामानि सप्त च॥ यजुर्वेद 12.75॥

फल मिश्रित जल से स्नान- ॐयाः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वःहसः॥ यजुर्वेद 12.89॥

वृषश्रृंग द्वारा मृदा स्नान-ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतो तऽइषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः॥ यजुर्वेद 16.1॥

धान्यमिश्रित जल से स्नान-ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान्प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनाम्पयोऽसि॥ यजुर्वेद1.20॥

कलश के जल से स्नान- ॐआजिघ्र कलशम्मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रन्धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्म्माविशताद्र रयिः॥ यजुर्वेद 8.42॥

अक्षत जल से स्नान- ॐओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तः राजन् पारयामसि॥ यजुर्वेद 12.96॥

जौ जल से स्नान-ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्य्यसीदमहः रक्षसाङ्ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि॥ यजुर्वेद 5.26॥

तिल जल से स्नान-ॐ तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पाऽआयुर्मे पाहि। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्यामाददे॥ यजुर्वेद 23.1॥

तीर्थ जल से स्नान-ॐ इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया ॥ ऋग्वेद 10.75.5

नदियों के जल से स्नान- ॐ **पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेभवत्सरित्** ॥34.11॥ यजुर्वेद 34.11॥

हाथियों के विचरण करने वाले पर्वतों की मिट्टी से स्नान- नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां व्वर्षमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्द्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः॥ यजुर्वेद 16.64॥

मधु मिश्रित स्थानीय खेत की मृदा से स्नान-ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरानिवेशनी। यच्छा नः शर्म्मसप्रथाः॥ यजुर्वेद 36.13॥

स्वर्णजल से स्नान-ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। सदाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्क कस्म्मै देवाय हविषा व्विधेम॥ यजुर्वेद 13.4॥

चाँदी जल से स्नान-ॐ रूपेण वो रूपमभ्यागान्तुथो वो व्विश्ववेदा व्विभजतु। ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा व्वि स्वः पश्य व्व्यन्तरिक्षँ य्यतस्व सदस्यैः॥ यजुर्वेद 7.45॥

आद्र वस्त्र सहित स्वच्छ जल से स्नान- यदश्श्वाय व्वासऽउपस्तृणन्त्यधीवासँ य्या हिरअण्यान्यस्मै। सन्दानमर्व्वन्तम्पड्वीशम्प्रिया देवेष्वा यामयन्ति॥ यजुर्वेद 25.39॥

पञ्च शिला पूजन-

नन्दा शिला का पूजन-ॐ आ ब्रह्मन्न्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्च्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्व्योऽतिव्व्याधी महारथो जायतान्दोग्ध्री धेनुर्व्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्य्योषा जिष्णूरथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरो जायतान्निकामे निकामे नः पर्जन्न्यो व्वर्षतु फलवत्त्यो नऽओषधयः पच्यन्ताँ य्योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ यजुर्वेद 22.22॥

भद्रा शिला पूजन-ॐ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्व्यशेमहि देवहितँ य्यदायुः॥ यजुर्वेद 25.21॥

जया शिला पूजन-ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेद:। स न: पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ऋग्वेद 1.99.1

रिक्ता शिला पूजन-ॐ यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्य्यस्य त्वा तपसे। देवस्त्त्वा सविता मद्ध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि॥ 37.11॥

पूर्णा शिला पूजन-ॐ पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्ज्ज शतक्रतो॥ यजुर्वेद 3.49॥

समस्त शिलाओं हेतु मन्त्र- ब्रह्म्म यज्ञानम्प्रथमम्पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो व्वेनऽआवः। स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥ यजुर्वेद 13.3॥

विष्णुध्यानम्- शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं।विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्। लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं। वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

ॐ **विष्णोर्रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा** यजुर्वेद ॥5.21॥

शिवध्यानम्- ध्यायेनित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् । पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

ॐ **नमस्ते रुद्र मुन्यवऽउतो तऽइषवे नमः ।। बाहुभ्यामुत ते नमः ।।** यजुर्वेद 16.1॥

इमन्देवाऽअसपत्नꣳ सुवद्ध्वम्महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकम्ब्राह्मणानाꣳ राजा॥ यजुर्वेद 9.40॥

विष्णु भगवान् आवाहन- ॐतद्विष्णोः परमम्पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ यजुर्वेद 6.5॥ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥5.15॥

शिव आवाहन-ॐ समख्ये देव्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा। मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहन्तव वीरं विदेय तवदेवि सन्दृशि॥ यजुर्वेद 4.23॥

ॐत्र्यम्बकँ यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। त्र्यम्बकँ यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥ यजुर्वेद 3.60॥

शिव स्तुति- ॐमूर्द्धानन्दिवोऽअरतिम्पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिञ्जनानामासन्ना पात्रञ्जनयन्त देवाः ॥ यजुर्वेद 7.24॥

शिला स्थापना- नन्दा शिला की ईशान कोण के गड्ढे में स्थापना करते समय सर्वोषधि, जल, पारद, घृत, मधु, ,रत्न और सप्त धातु डालकर, शिव का ध्यान करते हुए गड़ढे के वाँये भाग में इस मन्त्र से दीपक प्रज्वलित करें- त्वष्टा वीरन्देवकामञ्जजान त्वष्टुरर्वा जायतऽआशुरश्वः।त्वष्टेदं विश्वम्भुवनञ्जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः।। यजुर्वेद 29.9॥

ॐ स्थिरो भव। वीड्वङ्गऽआशुर्भव वाज्यर्वन्। पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः॥ यजुर्वेद 11.44॥

स्थापना करने के पश्चात् प्रार्थना- नन्दे त्वं नन्दिनीपुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्। प्रासादे तिष्ठ संहृष्टा यावाच्चन्द्रार्कतारकाः।। आयुष्कामाज्छ्रियं देहि देववासिनी नन्दिनी। अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या प्रासादे यत्नतो मम।।

भद्राशिला को आग्नेय कोण में महापद्म कलश के सहित स्थापना करें- भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितँ य्यदायुः॥ यजुर्वेद 25.21॥

वरण प्रार्थना- भद्रे त्वं सर्वदा भद्रा लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि सुखदा च सदा भव।। त्वामत्र स्थापयाम्यद्य गृहेस्मिन् भद्रदायिनी। अनिपुराण।।

जया शिला को नैर्ऋत्य कोण में शंख कलश के सहित स्थापना करें- जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ऋग्वेद 1.99.1

प्रार्थना- गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्राञ्च चतुर्भुजाम्। प्रासादे स्थापयाम्यद्य जयाञ्चारुविलोचनाम्।। नित्यञ्चयाय भूत्यै च स्वामिनो भव भार्गवि।

तत्पश्चात् रिक्ता शिला को विजय कलश सहित करें-ॐ त्र्यम्बकँ य्यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीय माऽमृतात्। त्र्यम्बकँ य्यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥ यजुर्वेद 3.60॥

प्रार्थना- रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिभुक्तिप्रदे शुभे। सर्वदा सर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिन् तत्र नन्दिनि।।परमपिता परमात्मा का ध्यान करते हुए भूखण्ड के मध्य में पूर्णा शिला को सर्वतोभद्र कलश के सहित स्थापित करें- पूर्णे त्वं सर्वदा पूर्णान् लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि धनदा सुतदा तथा।। गृहाधारा वास्तुमयी वास्तुदीपेनसंयुता। त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये।।

पूर्णाहुति- सर्वं वै पूर्णं स्वाहा।।

अब वेदवित् सपत्नीक ब्राह्मण, सम्बन्धियों तथा मित्रों को भोजन कराकर ऋद्धा पूर्वक दक्षिणा देकर विदा करें।

शिलान्यास विधि- शिलान्यास शुभ मास, नक्षत्र, तिथि, वार एवं मुहूर्त आदि का विचार कर गृहपति को विधि विधान से पूजाकर गृह का शिलान्यास करना चाहिए। शिलान्यास में आधारशिला प्रथम आग्नेय कोण में रखकर स्तम्भादि का प्रदक्षिण क्रम से स्थापना करना चाहिए यथा-

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमम्।

शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैव प्रतिस्थाप्याः।।बृ.वा.मा.124।।

नींव में शिला के साथ ताम्र-पात्र में मिट्टी, सोना, पञ्चरत्न, सप्तधान्य तथा शैवाल (समुद्र या तालाब की काई) आदि रखकर स्थापित करना चाहिए यथा-

मृदिष्टकास्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुतम्।

ताम्रपात्रस्थितं सर्वं खातमध्ये नियोजयेत् ॥ (बृ.वा.मा.143)

शिलान्यास हेतु उत्तम गुणवत्ता से युक्त विशेष सामग्री-

ताम्बे का लोटा यथाशक्ति सोने,चाँदी या तांबे का नाग-नागिन, सोना, सप्तधान्य, कलश, दीपक, घी, रुई, .कपूर, सुपारी, मौली, सफेद और लाल चन्दन, अष्टगन्ध,रोली, सिन्दूर, लौंग, इलाइची, चावल, ,मधु, गुड, दूध, दही, उड़द, गाय का गोबर, गोमूत्र,गंगाजल, धूप, गूगल,अगर, अबीर, हल्दी पाउडर, पानके पत्ता, तुलसीपत्ता , कुशा, दूर्वा,.केले के पत्ते , आम के पत्ते, फूल, फल, नारियल, धान का लावा,जौ का सत्तू,नदी का शैवाल आदि सामग्री क्षेत्र विशेष के अनुसार आवश्यकता होती है।

पूजा के लिए पुष्प, धूप, दीप, बलि आदि गुणवत्ता युक्त सामग्री का ससम्मान प्रयोग करना चाहिए। यह वास्तु विधान वास्तु के शरीर पर स्थित समस्त देवताओं के लिए होना चाहिए। इस प्रकार वास्तु पर निर्माण करने वाले विहित योग्य वास्तुपूजन करें क्योंकि इस तरह करने से भवन सदा सर्वदा सम्पदाओं से सम्पन्न रहेगा एवं यदि निर्माण के समय वास्तुपूजन नहीं किया जाएगा तो उस वास्तु में सम्पन्न होने वाले सभी कार्य असुरों के होंगे –

पुष्पैश्च धूपदीपैश्च बलिभिश्च महार्हणैं।

त्वं च त्वद्देहसंस्थाश्च पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात्।।

एवं मयैव विहितं कुर्वतां वास्तुपूजनम्।।

तदायतनवेश्मादौ वसतां सन्तु सम्पदः।।

अकृत्वा वा स्तुयजनं प्रासादभवनादिकम्।

कृतं तदासुरं सर्वं भूयात् तत्र च यत् कृतम्।। (शि. र.7.24-26)

गणेश पूजन, दशदिक्पाल पूजन, वास्तु देव पूजन, वास्तुशान्ति, नवग्रहस्थापना व अन्य देव पूजन, नाग पूजन, मिस्त्री के अस्त्र पूजन, स्थलपूजन आदि इस प्रकार क्षेत्र विशेष की विधि के अनुसार या मत्स्यपुराण के या फिर वैदिक विधि से शिलान्यास अवश्य करें।

इकाई-6 (वास्तुभेदों का परिचय)

जिस भवन का निर्माण मनुष्य आवासीय, व्यावसायिक एवं धार्मिक उद्देश्य से करते हैं, वह वास्तु कहलाता है इसके मुख्य तीन भेद सर्वत्र प्राप्त होते हैं यथा- 1. आवासीय वास्तु 2. धार्मिक वास्तु 3. व्यावसायिक वास्तु। समरांगणसूत्रधार में भी प्रमुख रूप से इन्ही तीन प्रधान विषयों का वर्णन है यथा-1. वास्तु- जनभवन, राजभवन और देवभवन 2. शिल्प- प्रतिमा निर्माण 3. चित्र- आलेख्य निर्माण के साथ- साथ यन्त्रकर्म, शयनासनादि का वर्णन अर्थात् पुर, दुर्ग,भवन, प्रासाद, प्रतिमा, चित्र,यन्त्र, शयनादि स्थापत्य के आठ अंग या देश, पुर, निवास, सभा एवं वेश्मासन में समाहित है और इन्हीं का विशेष वर्णन परमार राजा भोज विरचित समराङ्गणसूत्रधार के प्रथम सम्पादक श्री गणपतिशास्त्री जी ने किया था।

देशः पुरं निवासश्च सभा वेश्मासनानि च।
यद्यदीदृशमन्यच्च तत्तच्छ्रेयस्करं मतम्।।
वास्तुशास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणनिश्चयः।
तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रमेतदुरीर्यते।।(1.4-5)

मय के मतानुसार चार प्रकार के (वस्तु) वास्तु होते हैं- भूमि, प्रासाद(मन्दिर) यान और शयन का वर्णन है, इनमें मुख्य वस्तु भूमि ही है क्योंकि अन्य इसी से उत्पन्न होते हैं।

भूमिप्रासादयानानि शयनं च चतुर्विधम्।
वस्तुन्येव हि तान्येव प्रोक्तान्यस्मिन् पुरातनैः।। (मयमत 2.3)

शिल्परत्न में भवन, प्रतिमा तथा चित्रादि का वर्णन, अपराजितपृच्छा में वास्तु, शिल्प, गीत, ताल, वाद्ययन्त्रों का वर्णन है लेकिन तीन भेदों का वर्णन प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है। आवासीय वास्तु, के मुख्य सिद्धान्तों के विश्वकर्मा द्वारा रचित विश्वकर्मवास्तुशास्त्र, धार्मिक वास्तु के मण्डन द्वारा रचित प्रासादमण्डनम् एवं व्यावसायिक वास्तु के सन्दर्भ में मयमयतम् के अध्यायों में राजधानी तथा नगर विन्यास के प्रकरण में दुकान, व्यापार के लिए पत्तन इत्यादि के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। आधुनिक काल में भी यही भेद प्रभेदानुसार अनेक शाखाओं में विभक्त हैं। जैसे आवास के लिए फ्लैट, बंगला, गृह, हवेली, कॉलोनी धार्मिक वास्तु में देवालय, गुरुद्वारा आदि। व्यवसाय वास्तु में शोरूम, मॉल, दुकान, इत्यादि भेद देखने को मिलते हैं। धार्मिक, आवासीयवास्तु एवं व्यावसायिक वास्तु के निर्माण के समय निम्नलिखित सिद्धान्तों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यथा- वास्तुपद विन्यास(वास्तुपुरुष मण्डल), दिक् साधन, मान विचार(भवन का मान), आयादि विचार(आय, व्यय, अंश, ऋक्ष, योनि, वार, तिथि) , पताकादि विचार। उसी प्रकार भारतीय वास्तु के अनुसार भवन निवेश के लिए भी आठ भागों का

उल्लेख किया गया है। यथा - भूमि चयन, वास्तु भेद, प्रतिकृति(एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल, चतुश्शाल आदि) भवन नियोजन (Building bylaws), चय विधि(Material selection), भवनाङ्ग(स्तम्भ, द्वार, शाला, अलिन्द, पीठादि), सज्जा (Decoration), दोषादि।

6.1. **आवासीय वास्तु-** आवास के लिए फ्लैट, बंगला, गृह, हवेली, कॉलोनी आदि के लिए वास्तु मण्डल के प्रत्येक देवता एक ब्रह्मांडीय बल का प्रतिनिधित्व करते हैं जो पृथ्वी पर एक भौतिक विशेषता के रूप में वास्तुशास्त्र द्वारा समझ सकते हैं। प्रत्येक दिशा का अपना संरक्षक होता है, उन्हें दिक्पाल कहते हैं।

पूर्व का स्वामी इन्द्र, अग्नि, दक्षिण-पूर्व का स्वामी, यम, दक्षिण का स्वामी, निर्ऋति, दक्षिण-पश्चिम के अधिपति देवता, वरुण, पश्चिम का स्वामी, वायव्य, उत्तर-पश्चिम अधिपति देवता कुबेर, उत्तर का स्वामी **उत्तर-पूर्व** (ईशान कोण) दिशा का ग्रह बृहस्पति है। शिव पूर्वोत्तर दिशा के देव हैं। बृहस्पति मन्त्र, वेदों, देवताओं, धार्मिक कर्त्तव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, गाय, वित्त आदि यद्यपि केतु किसी भी दिशा का शासक नहीं है, तथापि एक मत के अनुसार यह पूर्वोत्तर का भी प्रतिनिधित्व करता है। केतु दर्शन, गणपति, गूढ विज्ञान, गूढ ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है। पूजागृह के लिए ईशान कोण व देवों की मूर्तियाँ पूर्वोत्तर दिशा में स्थापित करना शुभ है। पूजा करते समय पूर्वोत्तर दिशा में ही रखना चाहिए। घर में केतु का प्रतिनिधित्व स्थिर है पानी, पीछे के दरवाजे, सामने के दरवाजे के वेंटिलेशन, सीढ़ी तथा ऊँचाई कम रखना अनिवार्य है। अध्ययन कक्ष शुभ है।यदि इस दिशा में अविवाहित युवतियों का शयनकक्ष नहीं बनाना चाहिए क्योंकि इससे विवाह में देरी, कार्य हानि तथा शौचालय होगा तो यह धन से दूरी रखेगा और जीवन में दुःख और असफलता की ओर अवश्य आकर्षित करेगा तथा भोजनगृह अपव्यय व दुर्घटना की कारक होती है। **शम्भुकोणप्लवा भूमिःकर्तुः श्रीसुखदायिनी।**

पूर्व दिशा-(East direction) इन्द्र पूर्व के अधिपति देवता हैं। प्रातःकाल की सूर्य किरणें स्वास्थ्य के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं वही मध्याह्न काल में रेडियोधर्मिता के प्रभाव से प्रतिकूल होती हैं। इस दिशा में स्नानगृह और आवास से जल बाहर निकालना श्रेष्ठ है। डाईंग रूम पूर्व एवं आग्नेय के मध्य में, द्वार पूर्व में रखना श्रेष्ठ है तथा अधिक रिक्त स्थान भी शुभ होता है। जैसा कि वृहद्वास्तुमाला में कहा गया है **विदधात्यचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही, पूर्वप्लवा वृद्धिकरी ।**

दक्षिण-पूर्व/ Southeast (आग्नेय कोण) दक्षिण-पूर्व दिशा का शासन अग्निदेव द्वारा किया जाता है, वैदिक देवताओं में अग्नि शुद्ध करनेवाला, भक्षण करनेवाला और आनंद देनेवाला, अग्नि ही है जो तैयार करती है और परिपूर्ण करती है। जीवन की अग्नि को ऋग्वेद में वैश्वानर के रूप में वर्णित किया गया है। आध्यात्मिक अग्नि, वह शक्ति जो मनुष्यों को आध्यात्मिक उन्नति की ओर अधिक से अधिक ऊंचाइयों तक ले जाती है, और यही ब्रह्मांडिक अग्नि भी है जो ब्रह्मांड को बनाए रखती है।

दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) में रसोई घर, जनरेटर कक्ष, बिजली के मेन स्विचबोर्ड एवं ईन्वटर(Inverter) आदि शुभ है लेकिन दम्पति का शयनकक्ष होगा तो कलह बनी रहती है तथा इसमें त्रुटियों के परिणामस्वरूप चोरी, ऋण, अपमान, और हानि हो सकती है।

दक्षिण- दक्षिण यम द्वारा शासित है, मृत्यु के प्रभु, कानून के शासन का अवतार जो न्याय प्रदान करता है ।अपने कर्मों के अनुसार। दक्षिण का ग्रह मंगल है। मंगल कपड़े, आग, भयंकर स्वतंत्रता, तत्त्वों पर नियंत्रण का प्रतिनिधित्व करता है, आक्रामकता, हथियार, एक साहसी प्रकृति। मंगल ग्रह घर के भीतरी हॉल और गृह स्वामी के शयनकक्ष व अतिथि कक्ष का भी प्रतिनिधित्व करता है। दक्षिण में अधिक खाली स्थान छोड़ना तथा जल निकासी अशुभ है। जैसा कि वास्तुरत्नावली एवं वृहद्वास्तुमाला में कहा गया है- **"दक्षिणप्लवना पृथ्वी नराणां मृतिदा भवेत्"**।।

भूखण्ड की लम्बाई उत्तर-दक्षिण की अपेक्षा पूर्व-पश्चिम में अधिक होनी चाहिए अर्थात् भूमि दक्षिण-दक्षिण से कम है तो यह शुभ संकेत है। लेकिन अगर यह उत्तर-पश्चिम और उत्तर- पूर्व से कम हो तो आग का कारण बन सकता है दुर्घटनाओं, आपराधिक मन , यदि यह पूर्वोत्तर और उत्तर-पश्चिम से अधिक है तो यह धन को आकर्षित करता है।

दक्षिण-पश्चिम -दक्षिण-पश्चिम/ Southwest (नैर्ऋत्य कोण) का रक्षक देवता नैर्ऋति है जो रुद्रों में से एक है। नैर्ऋत्य दिशा सभी प्रकार की आपदाओं से जुड़ा हुआ है, जुआ और चरित्र जैसे विकार, सभी प्रकार की परेशानी, बुरे सपने, बीमारी। दक्षिण-पश्चिम का ग्रह राहु है। आफिस दक्षिण एवं नैर्ऋत्य के मध्य में, शौचालय दक्षिण- नैर्ऋत्य के मध्य व शौच के समय मुख पूर्व की ओर न करकर मुख उत्तर या दक्षिण की ओर करना चाहिए। तथा यह जुआ, अपशिष्ट सामग्री, प्रदूषण का प्रतिनिधित्व करता है और मुख्य द्वार। नैर्ऋति को नकारात्मक प्रभाव से दूर रखने के लिए दक्षिण-पश्चिम को ऊँचा और भारी रखना

चाहिए । जैसा कि वास्तुरत्नावली एवं वृहद्वास्तुमाला में कहा गया है- **गृहक्षयकरी सा च भूमिर्या नैर्ऋतप्लवा।।**

इसमें सीढ़ी, बेडरूम, स्टोर रूम, यन्त्र की दुकान आदि के निर्माण के लिए एक आदर्श स्थान है। दक्षिण-पश्चिम शौचालयों के निर्माण, भारी वस्तुओं का स्टोर ,अपशिष्ट सामग्री के भंडारण आदि के लिए भी यह एक अच्छी दिशा है। छत के ऊपर पानी की टंकियां दक्षिण अथवा पश्चिम में श्रेष्ठ रहती हैं।

दक्षिण-पश्चिम में दोष धीमी गति से कार्य करते हैं, अपने परिणामों में दूरगामी होते हैं और जल्दी प्रतिक्रिया नहीं देते हैं।

पश्चिम-पश्चिम का स्वामी वरुण है, जो पाचन शक्ति सही रखता **है अतः** भोजनकक्ष पश्चिम में बनाना श्रेष्ठ है। बृहस्पति आहार दोषों का परिहार करते है। संतान हेतु गुरु और बुध का स्थान अध्ययन और शयन कक्ष के लिए पश्चिम एवं नैर्ऋत्य उत्तम है और अध्ययन के समय पूर्व व उत्तर की ओर मुख रखना चाहिए लेकिन पुस्तकों को नैर्ऋत्य में नहीं रखना चाहिए। घर के पश्चिम का स्वामी वरुण है। ऋग्वेद में वरुण एक सम्राट है, जो सभी क्षेत्रों के राजा हैं। वरुण के पवित्र कार्य हैं। वह सभी अनंतों का स्वामी है, तथा पश्चिम में वास्तु दोष सभी प्रकार की साझेदारी से सम्बन्धित समस्याओं का परिणाम हो सकता है। व्यापार साझेदारी, जीवनसाथी और दोस्तों के साथ गलतफहमी, कानूनी मामले, मुकदमेबाजी आदि। जैसा कि वास्तुरत्नावली, ज्योतिर्निबन्ध एवं वृहद्वास्तुमाला में कहा गया है-**"धनहानिकरी चैव कीर्तिता वरुणप्लवा। -अर्थक्षयकरी विद्यात् पश्चिमप्लवना ततः"।।**

उत्तर-पश्चिम- North West (वायव्य) उत्तर-पश्चिम दिशा का ग्रह चन्द्रमा है। चन्द्रमा जल, मन, हृदय, चाँदी, महत्त्वपूर्ण ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है, माँ, बेटी, अच्छा पोषण, जीवन की अच्छी चीजें, तालाब। चन्द्रमा खिड़कियों का भी प्रतिनिधित्व करता है और घर के सामने की बाईं ओर की खिड़की व पूजा कक्ष है, तो उसके स्वामी को दिव्य वरदान प्राप्त होगा लेकिन कमरों में सूर्य की रोशनी नहीं पहुचेगी तो महिलाएँ पीड़ित व अस्वस्थ रहेगी। उत्तर-पश्चिम दिशा का रक्षक वायु है, वेद वायु में ब्रह्माण्डीय श्वास है। मनुष्य में वायु का प्रतिनिधित्व प्राण द्वारा किया जाता है जो इसके लिए जिम्मेदार है।

उत्तर-पश्चिम(वायव्य) दिशा में अध्ययन कक्ष, गेराज, पशुशाला, नवदम्पति शयन कक्ष, विवाह योग्य युवतियों के कमरे के निर्माण के लिए आदर्श है। अतिथि कक्ष, इस दिशा में शौचालय बना सकते हैं लेकिन शौच के समय मुख पूर्व की ओर न कर मुख उत्तर या दक्षिण की ओर रखें तथा उसका गन्दा

जल घर से बाहर वायव्य से निकाल सकते है। तैयार वस्तुओं के लिए गोदाम और ऐसी चीजें जो आप जल्द ही स्थानांतरित करना चाहते हैं। यदि उत्तर-पश्चिम पूर्व की तुलना में कम है तो इसके परिणामस्वरूप प्रतिद्वंद्विता और रोग होते हैं। सर्वोत्तम परिणामों के लिए यह इन से अधिक होना चाहिए लेकिन दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व से कम। **"वायुप्लवा तथा भूमि र्नित्यमुद्वेगकारिणी"।।**

उत्तर-उत्तर- महत्वपूर्ण दिशा है। देवालय भी उत्तर में शुभ होता है। वह जो उत्तर में है वह ओमकार है, सर्वव्यापी, अनंत है। परब्रह्म, एक, रुद्र, ईशान, महेश्वर इस दिशा का ग्रह बुध है। बुध दर्शन, शिक्षा, लेखन, ज्योतिष, प्रार्थना, परिवार की समृद्धि और उसकी समृद्धि। क्योंकि बुध संचार का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए घर में बुध हॉल का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ मित्र और रिश्तेदार मिलकर चर्चा करते हैं। आफिस उत्तर एवं ईशान के मध्य में तथा कुमारी युवतियों के लिए शुक्र- चन्द्रमा का स्थान, खजाने का भी प्रतिनिधित्व करता है जहाँ गहने और दस्तावेज आदि रखे जाते हैं। क्योंकि बुध संचार का प्रतिनिधित्व करता है, अंधकार युक्त ड्राइंग रूम या केंद्रीय हॉल के अनैतिक मामलों को चिह्नित करता है और परिवार में अनेक तरीकों से धनार्जन के रक्षक उत्तर के देवता कुबेर हैं उत्तर जितना अधिक खुला होगा, उतना अधिक समृद्ध परिवार होता है अतः नकद, कैशबॉक्स आदि उत्तर में ही रखे जाएँ।

भूखण्ड का ढलान पूर्व एवं उत्तर की ओर शुभ होता है, पश्चिम एवं दक्षिण की ओर कभी भी नहीं करना चाहिए। भूखण्ड के बीच में पश्चिम, नैर्ऋत्य, आग्नेय, वायव्य एवं दक्षिण में कुँआ, बोरिंग, भूमिगत टंकी, सैप्टिक टैंक अथवा किसी प्रकार का टैंक होना अशुभ होता है परन्तु आवास से बाहर गन्दा पानी निकालने की व्यवस्था इस दिशा से शुभ है **"उत्तरा धनदा स्मृता"**। भवन बनाते समय भूखण्ड पर पश्चिम की अपेक्षा पूर्व मै और दक्षिण की अपेक्षा उत्तर में अधिक खाली जगह छोडनी चाहिए।

वराहमिहिर एवं भोजराज के अनुसार भवन के मध्य में एकाशीतिपद वास्तुचक्र में नौ पद ब्रह्मा के होते हैं, इनमें वास्तु पुरुष का शिर, मुख, हृदय, नाभि एवं दोनों स्तन मर्म स्थानों पर कुँआ व भूमिगत गृह का निर्माण नहीं करना चाहिए।

गृहकक्षविभाग-

वास्तुशास्त्र में दिक्साधन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तुक्षेत्र में किस दिशा में देवतागृह, धनसञ्चय, आयुधाश्रय,स्नानगृह, भोजनादि की व्यवस्था कहाँ- कहाँ करनी चाहिए? अतः गृहकक्षविन्यास का सुख-समृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका है यथा-

पूर्वस्यां श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेयां स्यान्महानसम्।।

शयनं दक्षिणस्यां च नैर्ऋत्यामायुधाश्रयम् ।

भोजनं पश्चिमायां च वायव्यां धनसञ्चयम्।।

उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम्।

इन्द्राग्नयोर्मध्ये मथनं यमाग्नयोर्घृतमन्दिरम् ।।

यमराक्षयोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम् ।

राक्षजलयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मन्दिरम् ।।

तोयेशानियोर्मध्ये रोदनसय च मन्दिरम्।

कामोपभोगशयनं वायव्योत्तरयोर्गृहम् ।।

कौबेरेशानयोर्मध्ये चिकित्सामन्दिरं सदा ।

पुरन्दरेशयोर्ममध्ये सर्ववस्तुषु संग्रहम् ।।

सदनं कारयेदेवं क्रमादुक्तानि षोडश।

नैर्ऋत्यां सूतिकागेहं नृपाणां भूतिमिच्छता ।।बृ.वा.मा.150-155।।

दिशाज्ञानचक्र -

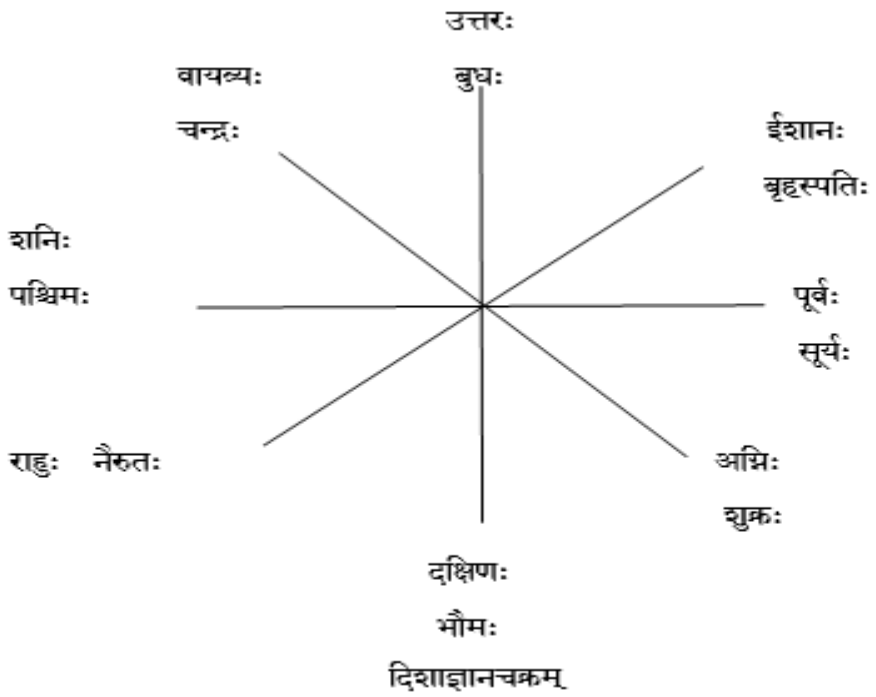

दिशाज्ञानचक्रम्

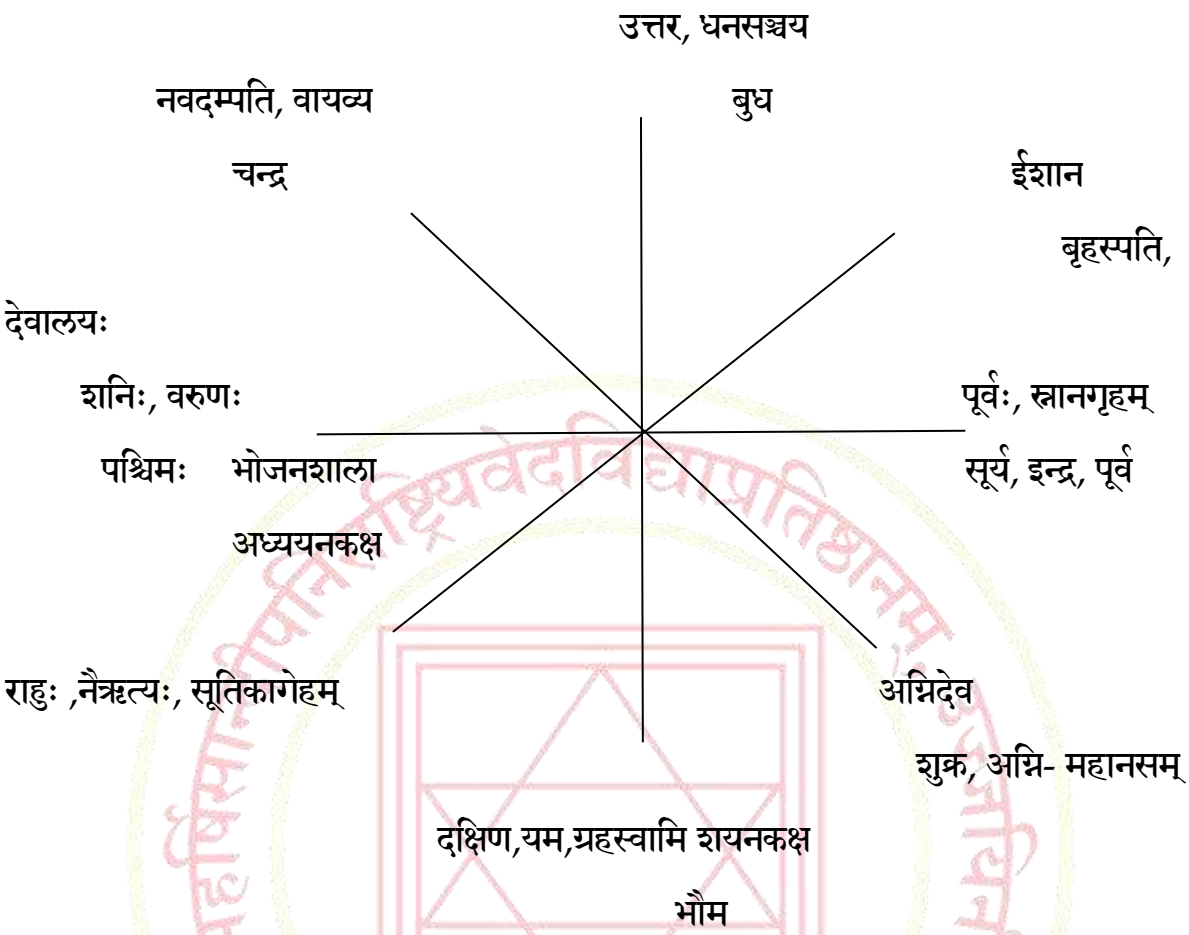

पूजाकक्ष- ज्ञान के अधिष्ठाता शिव ईशान कोण के स्वामी हैं। अतः पूजाकक्ष इस कोण में प्रशस्त होता है।

स्नानगृह- पूर्व दिशा के स्वामी इन्द्र हैं। अतः इस दिशा में स्नानगृह शुभ होता है।

पाकशाला- भवन के आग्नेय कोण में पाकशाला प्रशस्त होती है क्योंकि आग्नेय कोण के स्वामी अग्निदेव हैं।

भोजनकक्ष- पाचन क्रिया के सहायक स्वामी वरुण हैं अतः पश्चिम दिशा में भोजनकक्ष प्रशस्त होता है।

शयनकक्ष- गृहस्वामी का शयनकक्ष दक्षिण में, नवदम्पत्ति का वायव्य में, कुमारी कन्याओं का उत्तर-ईशान के मध्य में तथा सन्तान के लिए नैर्ऋत्य एवं पश्चिम दिशा में शुभ होता है।

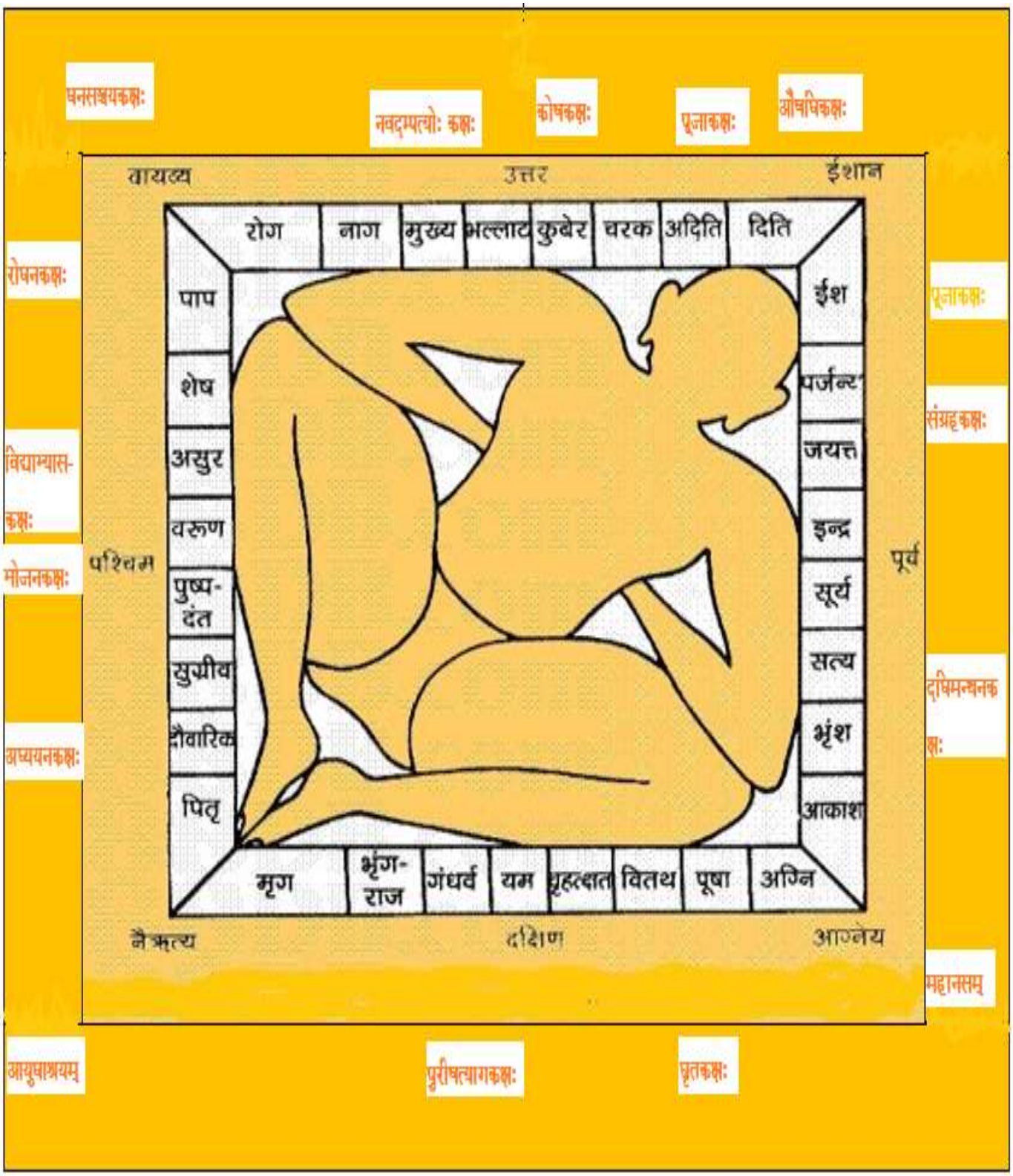
धनसञ्चयकक्षः
नवदम्पत्योः कक्षः
कोषकक्षः
पूजाकक्षः
औषधिकक्षः
वायव्य
उत्तर
ईशान
रोग
नाग
मुख्य
भल्लाट
कुबेर
चरक
अदिति
दिति
रोषनकक्षः
पाप
शेष
असुर
वरुण
पुष्प-दंत
सुग्रीव
दौवारिक
पितृ
ईश
पर्जन्य
जयन्त
इन्द्र
सूर्य
सत्य
भृंश
आकाश
पूजाकक्षः
संग्रहकक्षः
विद्याभ्यास-कक्षः
भोजनकक्षः
पश्चिम
पूर्व
अध्ययनकक्षः
दधिमन्थनकक्षः
मृग
भृंग-राज
गंधर्व
यम
बृहत्क्षत
वितथ
पूषा
अग्नि
नैऋत्य
दक्षिण
आग्नेय
महानसम्
आयुधाश्रयम्
पुरीषत्यागकक्षः
घृतकक्षः

कूप विचार- भवन के मध्य भाग में कुआं हो तो धन नाश, ईशान कोण में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य वृद्धि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण में स्त्रीनाश, नैर्ऋति कोण में मृत्यु पश्चिम में सम्पत्ति, वायव्य कोण में शत्रु पीडा एवं उत्तर में सुख प्राप्त होता है यथा-

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः।

सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम्।।(मुहूर्त्तचिन्तामणि)

कूप ज्ञान

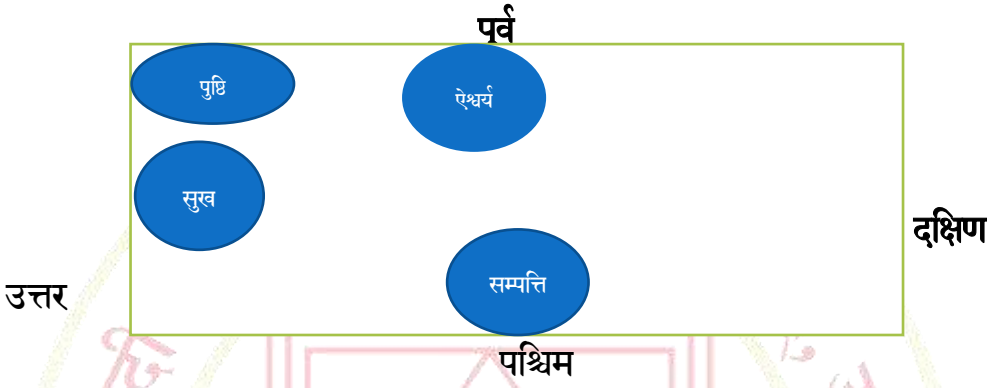

सारांश- इस प्रकार वेदों से यज्ञ, देवालय, शाला,आवासीय एवं व्यावसायिक वास्तु, शिल्पकला एवं चित्रकला का उद्भव हुआ और जो वेदों में लोहादि त्रिधातुओं के आवास, मनोरञ्जक, गृह के उपयोगानुसार कक्षों व उद्यान का निर्माण तथा चाँदी-सुवर्ण के आभूषणों, अन्न , गौ, अश्व रूपी निधियों को रखने के लिए कक्षों का निर्माण ऐसे होता था जैसे माता के उदर में अनुत्पन्न शिशु सुरक्षित रहता है, वैसे ही गृह की निधियों को भी शाला में सुरक्षित रखने की व्यवस्था थी। जैसा कि अथर्ववेद में वर्णन है-

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम्। यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः। तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ अथर्ववेद, 9.3.15.

मानव का शरीर भी पञ्चभूतात्मक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश का ही समिश्रण है। अर्थात् सब कुछ इन पाँच तत्त्वों पर ही निर्भर है।

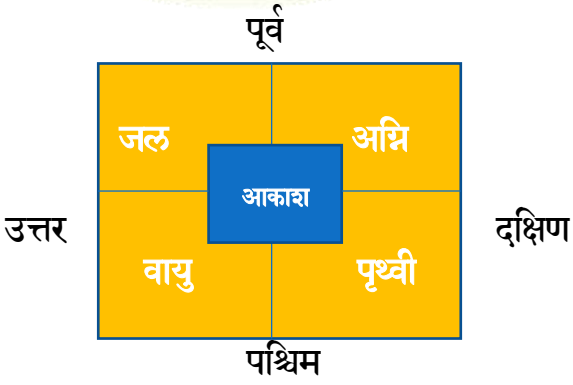

अर्थात् वेदों में जिस-जिस देवता से वास्तु के लिए जो जो प्रार्थना की गई। उसी के सिद्धान्तों के आधार पर सुख, समृद्धि एवं आरोग्य देनेवाले भवनों का निर्माण करना चाहिए।

6.2. व्यावसायिक वास्तु- व्यवसाय वास्तु में शोरूम, मॉल, दुकान, इत्यादि भेद देखने को मिलते हैं, इसमें इक्यासी (9x9=81) पद वास्तुमण्डल के अनुसार निर्माण करें-

शतवेश्मनि देशांश्च गृहादीनां निवर्त्तनम्।

एकाशीतिपदे नैव सर्वं स्थानं मापयेत्।।(विश्वकर्माप्रकाश 4.39)

इस वास्तु के निर्माण के समय निम्नलिखित सिद्धान्तों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यथा- वास्तुपद विन्यास(वास्तुपुरुष मण्डल), दिक् साधन, मान विचार(भवन का मान), आयादि विचार(आय, व्यय, अंश, ऋक्ष, योनि, वार, तिथि) , पताकादि विचार। उसी प्रकार भारतीय वास्तु के अनुसार भवन निवेश के लिए भी आठ भागों का उल्लेख किया गया है। यथा - भूमि चयन, वास्तु भेद, प्रतिकृति(एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल, चतुश्शाल आदि) भवन विनियोजन(Building bylaws), चय विधि(Material selection), भवनाङ्ग (स्तम्भ, द्वार, शाला, अलिन्द, पीठादि), सज्जा (Decoration), दोषादि। वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत इसके विभिन्न विधाओं पर विचार किया जाता है। यथा-वासयोग ग्राम,विचार, दिग्भेदेन वास्तुभेद से गृह विचार, जलसाधन विचार, देवालयविचार(Temple construction), द्वार विचार, प्राङ्गण विचार, मार्ग विचार, भूमिशोध एवं शुभाशुभ परीक्षण, गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त, पाकालय(Kitchen)व शौचालयादि(Loo) विचार पदविन्यास तथा,वास्तुपूजा विचार एवं वास्तुशान्ति विचार का विस्तृत वर्णन है।

देवालय वास्तु- ऋग्वेद काल प्रारम्भ होकर उत्तर वैदिक काल की संहिताओं में धार्मिक वास्तुशास्त्र का विस्तृत वर्णन मिलता है। जैसे- यज्ञ वेदियों व प्रतिमाओं के सन्दर्भ में प्राचीन काल से हमारे भारत में देवालयों की दो प्रमुख शैलियाँ प्राप्त होती हैं, जिसमें प्रथम नागर एवं द्वितीय द्राविण शैली। इन दोनों शैलियों के मिश्रण से ही वेसर शैली का उद्भव हुआ है। लेकिन देवालय या मण्डप का निर्माण चौसठ (8x8=64) वास्तु पुरुष मण्डल के अनुसार निर्माण करना चाहिए।

विशेषेणापि ये छत्रास्तथा ये चाष्टमण्डपाः।

चतुष्षष्टि पदेनैव सर्वानेतान् प्रमापयेत्।।(वि.क.प्र. 4.41)

धार्मिक वास्तु में यज्ञ, मण्डप, देवालय, गुरुद्वारा आदि। पवित्र तीर्थ स्थल के निकट नदी के तट या नदियों के सङ्गम पर, समुद्र के तट पर, पर्वतों के शिखर पर, वन – उद्यानों में गाँव- नगर में, सिद्धों के स्थान पर, गुरुकुल में और रमणीय स्थान पर श्रेष्ठजनों को देवालय बनाना चाहिए।

यथा- तीर्थान्ते तटिनीतटे जलनिधेस्तीरे सरित्सङ्गमे

शैलाग्रेऽद्रितटे वनोपवनयोरुद्यानदेशे तथा।

सिद्धाद्यायतनेषु वा गुरुवरो ग्रामे, पुरे, पत्तने

देशेऽन्यत्र मनोरमे सुरसमिज्यायै क्षितिं कल्पेत्।। (शि.र.9.1)

ग्राम- नगरादि में पूर्व- पश्चिम दिशा का निर्णय कर प्रसिद्ध भूमि को ग्रहणकर देवताओं के लिए देवालय बनाना चाहिए। भगवान् शिव को उनकी ही दिशा(ईशान) में, वायव्य कोण में में दैत्य निशुम्भ को पराजित करने वाली दुर्गा जी की प्रतिष्ठा करें। तारकासुर को जीतने वाले स्कन्द की उत्तर दिशा में, गाँव के नैर्ऋत्य कोण में गणपति एवं शास्तरि देवों को इसी तरह विष्णु भगवान् आदि सातों देवों की प्रतिष्ठा वास्तु के मध्य में करना चाहिए।

प्राचि प्रतीचि च हरौ निजदिश्ययुमेशे वायौ निसुम्भजिति तारकाजित्युदीच्याम्।

ग्रामादिकेषु निर्ऋतौ गणपार्यनाम्नोर्गृह्णातु भूमिमखिलेष्वपि मध्यतो वा।।(शि.र.9.2)

शिवादि देवालयों के प्रमाण- भूमि के प्रमाण के अनुसार परिघ में तीन दण्ड से बत्तीस दण्ड के बराबर, जिस भूमि की आठों दिशाए समान हों, वहाँ शिव का देवालय बनाएँ यथा-

परिघं तु त्रिदण्डादि यावद् द्वात्रिंशतिदण्डकम्।

तदेव चाष्टदिशि च कर्तव्यं शिवमन्दिरम्।।(शि.र.9.3)

परिघ के अन्दर मन्दिर बनाना हो तो गुरु पैशाचिक पद के अतिरिक्त मानुष पद पर ही शिवालय का निर्माण करे और पैशाचिक पर निर्मित होने वाले देवालय को पश्चिममुखी ही निर्मित करे यथा-

परिघाभ्यन्तरे वापि पैशाचिकपदे गुरुः। मानुषे तु पदे वाथ कर्तव्यं शिवमन्दिरम्।।

पैशाचिकपदे कुर्यादालयं तु पराङ्मुखम्।।(शि.र.9.4)

देवालय के अनुसार मध्य में ब्रह्मा तथा अपने – अपने स्थानों पर कृमशः कुबेर, सूर्य पूर्व या ईशान कोण के मध्य में, उमा, शर्व, शिवमय और अर्यमा को भी पूर्व दिशा में प्रतिष्ठित करें। गोशाला, सोम उत्तर

उत्तर दिशा, राक्षस (नैर्ऋत्य) कोण में तथा अग्निकोण में माता काली, दण्डधर, तीरकमान सहित मातृकाएँ या ब्रह्माणी, भारती एवं क्षेत्रप, ईश्वर, इन्द्र, चन्द्रमा, ज्येष्ठा, वायु एवं वरुणदेव स्वामी हैं।

मध्येऽजः स्वपदे धनेशतरणी प्रागीशमध्येषु मा शर्वाणीरमयोर्यमेन्द्रदिशि गोशालेन्दुरक्षोग्निषु।

काली दण्डधराशरेन्दु जनन्यो वा विधौ भारती।

स्याद्वा क्षेत्रप ईश्वरेन्द्रशशिषु ज्येष्ठानिलाब्धीशयोः।।(शि.र.9.5)

सूर्य के स्थान पर सूर्यदेव, भृश के स्थान पर विष्णु, अग्निके स्थान पर काली, यम के स्थान पर गुह की प्रतिष्ठा करना चाहिए। विष्णु भगवान् को वरुण के स्थान के मध्य में, सुग्रीव के पद पर सुगत, भृश के स्थान पर मातृकाओं का, ज्येष्ठा को वायु के स्थान पर और चण्डी को मुख्य के स्थान पर प्रतिष्ठित करें। कुबेर के स्थान पर महाकाली तथा सोम के अन्य देवियों की स्थापना, अदिति के स्थान पर चामुण्डा और ईशान के वास्तुपद पर शिवालय की स्थापना करना शुभ है यथा-

कुबेरे च महाकाल्यां मातृणां च निशाकरे।

अदिति वास्तुचामुण्ड्याः शस्तमैशे शिवालयम्।।(शि.र.9.8)

नैर्ऋत्य व जयन्त के वास्तुपद पर विघ्नेश (गणपति) का देवालय बनाएँ अन्यथा प्रकार से देवालय का विन्यास करें।

प्रासादमण्डन के अनुसार देव स्थापना गणेश, भैरव, चण्डी, कुबेर, कुलीश, नवग्रह एवं मातृ देवों को दक्षिणाभिमुख स्थापित करना चाहिए। वानरेश्वर हनुमान जी का मुख नैर्ऋत्य दिशाभिमुख होना चाहिए और अन्य देवताओं का मुख इस दिशा में नहीं रखना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, और कार्तिकेय देवों को पूर्व और पश्चिम-अभिमुख स्थापित करना चाहिए। शिवलिङ्ग के सामने किसी भी देव को पूजन के लिए स्थापित नहीं करना चाहिए क्योंकि जैसे सूर्य के तेज से तारों की प्रभा नष्ट होती है, वैसे ही दूसरे देवों की प्रभा नष्ट हो जाती है। इसलिए वे देव भोगादि-सुख सम्पत्ति नहीं दे सकते हैं। शिव के सामने शिव, ब्रह्मा के सामने ब्रह्मा, विष्णु के सामने विष्णु, जिनदेव के सामने जिनदेव और सूर्य के सामने सूर्य, इस प्रकार आपस में स्वजातीय देव स्थापित किए जा सकते हैं। इसी प्रकार चण्डिका आदि देवी के सामने मातृदेवता, यक्ष, क्षेत्रपाल और भैरव आदि देव भी स्थापित किए जा सकते हैं। यथा-

पूर्वपरास्यदेवानां कुर्यान्नो दक्षिणोत्तरम्।

ब्रह्मविष्णुशिवार्केन्द्रगुहाः पूर्वापराङ्मुखाः॥

नगराभिमुखाः श्रेष्ठा मध्ये बाहो च देवताः।

गणेशो धनदो लक्ष्मीः पुरद्वारे सुखावहाः ।।

विघ्नेशो भैरवश्चण्डी नकुलीशोग्रहास्तथा।

मातरो धनदश्चैव शुभा दक्षिणदिङ्मुखाः ।।

नैर्ऋत्याभिमुखः कार्यो हनुमान् वानरेश्वरः ।

अन्ये विदिङ्मुखा देवा न कर्त्तव्याः कदाचन।। (प्रा. म.-अ. 2, पद्य 37-40

।।श्री।।

इकाई-6 (गृहारम्भ ज्ञान)

7.1. पञ्चाङ्गज्ञान-

दिन को चौबीस (24) घण्टों के साथ-साथ आठ(8) पहरों में विभाजित किया गया है। एक प्रहर लगभग तीन घण्टे का होता है। एक घण्टे में लगभग दो घड़ी होती हैं, एक पल लगभग आधा मिनट के बराबर होता है और एक पल में चौबीस क्षण होते हैं। पहर के अनुसार देखा जाए तो चार पहर का दिन और चार पहर की रात होती है।

ये चान्द्रसौर प्रकृति के होते हैं। सभी हिन्दू पञ्चाङ्ग, कालगणना के एक समान सिद्धान्तों और विधियों पर आधारित होते हैं।

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय दिवस है, एक दिवस में एक दिन और एक रात होती हैं। दिवस के समय को 60 भागों में विभाजित किया गया है। इस प्रकार एक दिवस में 3600 पल होते हैं। एक दिवस में जब पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है तो उसी कारण सूर्य विपरीत दिशा में घूमता प्रतीत होता है। 3600 पलों में सूर्य एक चक्कर पूरा करता है और इस प्रकार 3600 पलों में 360 अंश 10 पल में सूर्य का जितना कोण बदलता है उसे 1 अंश कहते हैं। पंचांगों में मास चन्द्रमा के अनुसार होता है।

इसे भी समझे-

1 दिन में = 60 घटी यानि 24 घंटे का समय।1 घटी में = 24 मिनट।1 घटी = 60 पल यानि 60 पल 24 मिनट के बराबर है।1 पल में = 24 सेकेण्ड।1 पल = 60 विपल। 60 विपल में 24 सेकेण्ड। 1 विपल = 24 सेकेण्ड। 1 विपल में = 60 प्रतिविपल।1 पल में = 6 प्राण

1 प्राण = 4 सेकेण्ड आदि सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयव अनन्त होते हैं।

चन्द्रमा की एक कला को तिथि माना जाता है जो उन्नीस घण्टे से 24 घण्टे की हो सकती है। अमावस्या के बाद प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियों को शुक्लपक्ष तथा पूर्णिमा से अमावस्या तक की तिथियों को कृष्ण पक्ष कहते हैं।

तिथि - सूर्य-चन्द्रमा के भ्रमण से जब अन्तर द्वादशांश (12) होता तब एक तिथि होती है। मास में शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष दो पक्ष होते हैं तथा प्रत्येक पक्ष में 15 तिथि होती हैं। एक राशि में 30 अंश होते हैं। इस प्रकार अमावस्या से अमावस्या या पूर्णिमा से पूर्णिमा तक चक्कर लगाने के लिए चन्द्रमा को 30x12=360 अंश गति करनी पड़ेगी। इन 360 अंशों को 30 तिथियों में विभाजित किया करने पर एक तिथि में प्रायः 12 अंश होते हैं। इस प्रकार सूर्य से चन्द्रमा को 12 अंश आगे जाने को ही एक तिथि कहते हैं। सूर्य एवं चन्द्र के अमावस्या में समागम के बाद दोनों ग्रहों में उत्तरोत्तर दूरी में अन्तर आता

जाता है जब शीघ्र गतिमान चन्द्र 12 अंश तक जाता है, उस अन्तर को प्रतिपदा तिथि कहते हैं। इसी प्रकार 12-24 अंशान्तर को द्वितीया। एवमेव क्रमशः 12-12 अंशों की वृद्धि से तिथियों का वृद्धि क्रम भी चलता रहता है और 168 से अन्ततोगत्वा, पूर्णिमा को सूर्य-चन्द्र में 180 अंश का अत्तर हो जाने पर पर पूर्ण चन्द्र दिखाई देता है और इसी के साथ शुक्ल पक्ष समाप्त हो जाता है। कृष्णपक्ष को चन्द्र के 180 से अंश 12 अंश न्यून करने पर 168 पर प्रतिपदा तथा प्रतिदिन 12 अंश क्षीण होने से द्वितीयादि तिथियों का निर्माण होने लगता है। इस प्रकार क्रमशः चन्द्र अपनी गति करते हुए चन्द्र 0 अंश पर पहुँच कर अमावस्या तिथि के साथ कृष्णपक्ष की समाप्ति होती है।

तिथियों के नाम – पूर्णिमा प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या।

इसे भी समझे- क्षेत्रीय भाषा में तिथियों के नाम - परिवा, दूज, तीज, चौथ, पंचमी, छठ, सातें, आठें, नौमी, दसमी, ग्यारस, द्वाशि, तेरस, चौदस, पौर्णमासी और अमावस।

प्रतिपदादि तिथियों के स्वामी-

तिथीशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गहो रविः।

शिवो दुगन्तिको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी।।(मु.चि. शु.अ. प्र.3)

अग्नि, ब्रह्मा, गौरी, गणेश, सर्प, कार्तिकेय, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, विश्वेदेव, विष्णु, कामदेव, शिव और चन्द्रमा ये क्रम से प्रतिपदादि तिथियों के स्वामी हैं।

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः।

सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः।। (मु.चि. शु.अ. प्र.4)

तिथि संज्ञा- शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की सभी तिथियों को नन्द्रा, भद्रा आदि संज्ञा दी गई हैं। यहाँ पूर्ण में पूर्णिमा और अमावस्या दोनों का ग्रहण करना चाहिए। ये तिथियाँ शुक्लपक्ष में पहले अशुभ,फिर मध्यम और फिर शुभ होती हैं। कृष्णपक्ष में पहले शुभ फिर मध्यम, अन्तिम अशुभ हैं।

तिथि संज्ञा संज्ञा बोधक चक्र-

नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
प्रतिपदा,	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी
षष्ठी	सप्तमी	अष्टमी	नवमी	दशमी
एकादशी	द्वादशी	त्रयोदशी	चतुर्दशी	पूर्णिमा /अमावस्या

नन्दादि तिथियों के कर्तव्य कर्म-

नन्दा तिथियाँ- कृषि, गृह सम्बन्धित कार्य, उत्सव, वस्त्र और शिल्प सम्बन्धित कार्य करना चाहिए।

भद्रा तिथियाँ – कला, वाहन सवारी, यात्रा, उपनयन, विवाह और आभूषण निर्माणादि कार्य करने चाहिए।

जया तिथियाँ – यात्रा, उत्सव, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, व्यापार, औषधि सेवन, सैन्य संगठन, सैनिक प्रशिक्षण, शस्त्र निर्माण और युद्ध सम्बन्धित कार्य करने चाहिए।

रिक्ता तिथियाँ – अग्नि सम्बन्धित कार्य, शल्यक्रिया, शस्त्र प्रयोग, शत्रु दमन और शत्रुओं को गिरफ्तार करना आदि कार्य करने चाहिए।

इसे भी समझे- यदि तिथि द्वितीय सूर्योदय को स्पर्श करे तो तिथि वृद्धि परन्तु तिथि आरम्भ होकर द्वितीय सूर्योदय से पहले ही समाप्त हो जाए तथा सूर्योदय से पहले दूसरी तिथि लग जाए तो तिथि क्षय समझे।

पूर्णा तिथियाँ – यज्ञोपवीत, विवाह, यात्रा, नृपाभिषेक तथा पौष्टिक कर्म करने चाहिए।

तिथि विचार- सूर्योदय के समय जो तिथि हो, उसमें ही पठन-पाठन, व्रतोपवास, देवकर्म, दान, प्रतिष्ठा, विवाहादि मांगलिक कार्य करने चाहिए। शरीर पर तैल- उवटन, जन्म-मरण तथा श्राद्ध में तात्कालिक तिथि ही ग्रहण करनी चाहिए।

कुछ स्थानों पर पूर्णिमा से मास समाप्त होता है तो कुछ स्थानों पर अमावस्या से। पूर्णिमा से समाप्त होने वाला मास पूर्णिमान्त कहलाता हैं और अमावस्या से समाप्त होने वाला मास अमावस्यान्त कहलाता है। अतः अधिकांश स्थानों पर पूर्णिमान्त मास का ही प्रचलन है।

इस प्रकार चन्द्र मास में 30 तिथियाँ होती हैं। जो शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त पन्द्रह तिथि हैं। कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से अमावस्या तक पन्द्रह तिथि हैं।

प्रदोषकाल- चतुर्थी का प्रथम प्रहर, सप्तमी का प्रथम डेढ़ प्रहर एवं त्रयोदशी के प्रथम दो प्रहर का समय प्रदोष संज्ञक है जो शुभ कर्मों में त्याज्य है।

ब्रह्मपुराण के अनुसार- षष्ठी एवं द्वादशी अर्द्ध रात्रि के एक घटी पूर्व तक हो तथा नौ घटी रात्रि तक तृतीया हो तो उसमे अध्ययन नहीं करना चाहिए।

निर्णयामृत के अनुसार - रात्रि में तीन प्रहर से पहले सप्तमी व त्रयोदशी हो तो प्रदोष होता है।

स्कन्दपुराण के अनुसार- सूर्यास्त के बाद छः घटी प्रदोषकाल होता है।

प्रतिपदादि तिथियों करने योग्य कार्य-

प्रतिपदा कृष्णपक्ष-गृहारम्भ, ग्रहप्रवेश, सीमन्तोनयन,चौलकर्म, उपनयन,यात्रा, विवाह, प्रतिष्ठा, शान्तिक तथा पौष्टिक कार्य शुभ हैं।

द्वितीया- उपनयन,वास्तुकर्म, प्रतिष्ठा, यात्रा,विवाह मुहूर्त, आभूषण खरीदना, संगीत विद्या के लिए, देश व राज्य सम्बन्धी कार्य तथा वित्तीय कार्य आदि कार्य करना शुभ माना गया है। इस तिथि में तेल लगाना वर्जित है।

तृतीया- सीमन्तोनयन, चूड़ाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, सगीत विद्या, शिल्पकला, गृह प्रवेश, विवाह, यात्रा, राजकार्य आदि शुभ कार्य करने चाहिए।

चतुर्थी- विद्युत कार्य, शत्रु कार्य, अग्नि कार्य, शस्त्रों का प्रयोग आदि क्रूर कार्य शुभ माने जाते है।

पञ्चमी-समस्त शुभ कार्य, ऋण देना वर्जित है एवं चरस्थरादि कार्य किए जा सकते हैं।

षष्ठी-युद्ध सम्बन्धित कार्य, शिल्प कार्य, वास्तुकर्म, गृहारम्भ, नवीन वस्त्र , तैलाभ्यंग, अभ्यंग, पितृकर्म, दातुन, आवागमन, काष्ठकर्म तथा पितृ कार्य वर्जित हैं।

सप्तमी- चूड़ाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, विवाह, संगीत, आभूषणों का निर्माण और नवीन आभूषणों को धारण किया जा सकता है. यात्रा, वधुप्रवेश, गृहप्रवेश, राज्य संबंधी कार्य, वास्तुकर्म, संस्कार, आदि सभी शुभ तथा द्वितीया, तृतीया और पंचमी तिथियों में निर्दिष्ट कार्यों को करना चाहिए।

अष्टमी- युद्ध , अस्त्र-शस्त्र धारण, लेखन कार्य, वास्तुकार्य, शिल्प संबंधित कार्य, रत्नों से संबंधित कार्य, आमोद-प्रमोद तथा मनोरंजन सम्बन्धित कार्य करने चाहिए परन्तु मांस सेवन नहीं करना चाहिए।

नवमी- आखेट, शस्त्र निर्माण, झगड़ा करना, जुआ खेलना, मद्यपान एवं निर्माण कार्य तथा चतुर्थी तिथि में किए जाने वाले कार्य भी किए जाने चाहिए।

क्षय-वृद्धि तिथि विचार-क्षय-वृद्धि तिथियों में किए गए कार्य निष्फल हो जाते हैं।

दशमी -समस्त राजकार्य ,हाथी, घोड़े तथा वाहनों संबंधित कार्य, विवाह, संगीत, वस्त्र, आभूषण, यात्रा ,गृह-प्रवेश, वधु-प्रवेश, शिल्प, अन्न प्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन संस्कार आदि कार्य तथा द्वित्तीया, तृतीया, पंचमी तथा सप्तमी को किए जाने वाले कार्य शुभ है।

एकादशी- व्रतोपवास धार्मिक कार्य, देव उत्सव, वास्तुकर्म, युद्ध सम्बन्धित, शिल्प, यज्ञोपवीत, गृहारम्भ, यात्रा संबंधी, मद्यनिर्माण आदि शुभ कार्य किए जा सकते हैं।

द्वादशी- समस्त चर-स्थिर कार्य, उपनयन, विवाह, गाड़ी चलाना, सड़क निर्माण आदि शुभ कार्य किए जा सकते हैं लेकिन तैलमर्दन, नूतन गृह निर्माण-प्रवेश तथा यात्रा वर्जित है।

शुक्ल -त्रयोदशी- युद्ध कार्य, सेना, अस्त्र-शस्त्र, ध्वज निर्माण, राजकार्य, वास्तु कार्य, संगीत, किए जा सकते हैं लेकिन इस तिथि में यात्रा, गृह प्रवेश, नवीन वस्त्राभूषण तथा यज्ञोपवीत आदि कार्य वर्जित है। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी तथा दशमी वर्णित कार्य किए जा सकते हैं।

चतुर्दशी- विष प्रयोग, शस्त्र धारण, क्रूर तथा उग्र कर्म करने चाहिए तथा चतुर्थी तिथि में किए जाने वाले कार्य किए जा सकते हैं लेकिन क्षौर और यात्रा करना वर्जित है।

पूर्णिमा- विवाह, यज्ञ, शिल्प, आभूषणों से संबंधित कार्य, वास्तुकर्म, संग्राम, जलाशय, यात्रा, शांतिक तथा पौष्टिक जैसे सभी मंगल कार्य किए जा सकते हैं।

अमावस्या- पितृकर्म, महादान करना चाहिए परन्तु अन्य शुभ कर्म नहीं करने चाहिए।

अमावस्या और पूर्णिमा का विशेष विचार - अमावस्या तिथि तीन प्रकार की होती है- सिनीवाली, दर्श और कुहू। प्रातःकाल से प्रारंभ होकर रात्रि पर्यन्त व्यापिनी अमावस्या **सिनीवाली** , चतुर्दशी से विद्धा **दर्श** तथा प्रतिपदा से युक्ता **कुहू** संज्ञक होती है।

इसी प्रकार पूर्णिमा की भी दो संज्ञाएँ होती है- अनुमति और राका। रात्रि को एक कलाहीन और दिन में पूर्णचन्द्र से सम्पन्न **अनुमति** संज्ञक चतुर्दशी से युक्त होती हैं और रात्रि में पूर्ण चन्द्र सहित पूर्णिमा प्रतिपदा से युक्त **राका** होती है।

वार विचार- वारदोष , परिहार, भारतीय पञ्चाङ्ग विधान में सौर दिन को सावन दिन कहा जाता है। एक सूर्योदय से द्वितीय सूर्योदय होने के पूर्व समय को वार माना जाता है। सृष्टि का शुभारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा एवं रविवार से हुई अतः सप्ताह का आरम्भ सूर्य, चन्द्र,मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र औऱ शनि आदि प्रमुख ग्रहों पर आधारित हैं जैसा कि पिछले **ग्रहभेदाध्याय** में आपने वार क्रम पढ़ा।

वारों की ध्रुव, स्थरादि संज्ञा- रविवार- चर और स्थिर संज्ञक है। अतः इस दिन नवीन वस्त्र धारण, यज्ञ, मन्त्रोपदेश, राज्याभिषेक, गीत, राज्यसेवा, औषधि क्रय, पशुओं का क्रय- विक्रय, सुवर्ण, रजत और ताम्र सम्बन्धित कार्य करना चाहिए।

सोमवार- चर और चल संज्ञक हैं। इस दिन ग्रहारम्भ, कृषि कार्य, उद्यान, गाय- भैस का क्रय- विक्रय, आभूषण निर्माण और गीत इत्यादि कार्य करने चाहिए।

इसे भी समझे- जो कार्य जिस वार में सम्पन्न नहीं हो सकें तो उस कार्य को उस वार की काल होरा में करना चाहिए।

कुजवार- उग्र और क्रूर संज्ञक है। इस दिन सन्धि- विच्छेद, सैन्य एव युद्ध सामग्री का संग्रह, छल-कपट, सुवर्ण, मूगा आदि से सम्बन्धित कार्य करना चाहिए।

पूर्वाह्न में देवता पूजन, संस्कारादि एवं मांगलिक कर्म, मध्यान काल में अतिथि सत्कार व व्यावहारिक कार्य तथा अपराह्न में श्राद्धादि पितृ कार्य करने चाहिए।

बुधवार- मिश्र और साधरण संज्ञक है। इसमें अध्ययनारम्भ, साहित्य, सगीत, कला,पाणिग्रहण, धान्यसंग्रह और प्रतिमा निर्माण का कार्य करना चाहिए।

गुरुवार- यह लघु और क्षिप्र संज्ञक है। इस दिन यज्ञ, विद्यारम्भ, धार्मिक कृत्य, वाहन क्रय- विक्रय, पौष्टिक कर्म, औषधि कार्य, प्रवास- आरम्भ और आभूषण धारण करने चाहिए।

शुक्रवार- मृदु और मैत्र संज्ञक है। इस वार में कृषि कार्य, वाणिज्य कार्य, मैत्री, ऐश्वर्यवर्द्धक कार्य, नूतन वस्त्र- आभूषणों का धारण, स्त्रीविषयक कार्य, नृत्य, गीतादि कार्य करने चाहिए।

शनिवार- दारुण और तीक्ष्ण संज्ञक है। इस वार में यज्ञ के लिए काष्ठ संग्रह, नवीन वाहन क्रय- विक्रय, अस्त्र- शस्त्र कार्य, असत्य भाषण, छल-कपट, तस्करी आदि कार्य करने चाहिए।

वार दोषों का सामान्य उपाय- यदि कार्य उस वार में आवश्यक हो तो रविवार को ताम्बूल भक्षण एवं दान, सोमवार को चन्द्र लगाना व दान, कुजवार को भोजन एवं पुष्प दान, बुधवार को बुध मंत्र का जप, गुरुवार को शिवाराधना एवं भोजन दान, शुक्रवार को श्वेत वस्त्र दान व धारण, शनिवार को ब्राह्मण सेवा एवं तैलस्नान करने के बाद कार्य प्रारम्भ करना चाहिए।

नक्षत्र -आकाश में स्थित तारा समूह को नक्षत्र कहते हैं। अर्थात् आकाश में स्थित तारा समूह ही नक्षत्र हैं और ये चन्द्रमा के पथ से जुडे हैं। आकाश का मान 360 माना जाता है। इस भचक्र को 27 भागों मे विभाजित करने पर 13 अंश 20 कला का एक नक्षत्र का मान प्राप्त होता है तथा किसी समय पृथ्वी के जिस नक्षत्रपुञ्ज में चन्द्रमा दिखाई दे उस समय वही नक्षत्र होता है। मूलत: 27 नक्षत्र होते हैं। 28 वां अभिजित (उत्तराषाढ़ा के चतुर्थ चरण की अन्तिम 15 घटी एवं श्रवणा नक्षत्र का प्रथम पाद की 4 घटी) नक्षत्र का मान होता है। चन्द्र उक्त सत्ताईस नक्षत्रों में भ्रमण करता है तथा एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं, प्रति चरण 3 अंश 20 कला का होता है। जैसा कि अथर्ववेद के 19वें काण्ड के 7वें सूक्त में 28 नक्षत्रों का वर्णन हैं।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ (अथर्ववेद.19.7.2,3.4.5)

1. कृत्तिका, 2. रोहिणी, 3. मृगशिरा, 4. आर्द्रा, 5. पुनर्वसु, 6. पुष्य, 7. आश्लेषा, 8. मघा, 9.पूर्वा-फल्गुनी, 10. उत्तरा फल्गुनी, 11. हस्त, 12. चित्रा, 13. स्वाति, 14. विशाखा, 15. अनुराधा, 16. ज्येष्ठा, 17. मूल, 18. पूर्वाषाढा, 19. उत्तराषाढा, 20. अभिजित, 21. श्रवण, 22. श्रविष्ठा (धनिष्ठा), 23. शतभिषज् (शतभिषा), 25. दोनों प्रोष्ठपदा (पूर्वा भाद्रपदा और उत्तरा भाद्रपदा), 26 रेवती, 27. दो अश्वयुज् (अश्विनी) तथा 28. भरणी।

नक्षत्रसंज्ञा- स्वभाव के अनुसार नक्षत्रों के ध्रुव, चर, उग्र, मिश्र, लघु, मृदु और तीक्ष्ण ये सात भेद हैं।

ध्रुव एवं स्थिर नक्षत्र- रविवार के दिन रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद होने से बीजवपन, गृहप्रवेश, उद्यान, नगर प्रवेश, गायन आरम्भ, वस्त्र धारण, कामक्रीडा, आभूषण निर्माण एवं धारण, शुभकार्य, नृत्य एवं मैत्री आदि कार्य उत्तम माने जाते हैं।

चर - चल नक्षत्र- सोमवार को पुनर्वसु, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा आदि नक्षत्रों में वाहन क्रय-विक्रय और प्रशिक्षण,यात्रा, कला, दुकान खोलना इत्यादि कार्यों का प्रारंभ करना श्रेष्ठ हैं।

जन्म नक्षत्र में अन्नप्राशन, उपनयन और राज्याभिषेक आदि कार्य प्रशस्त हैं परन्तु सीमन्तोनयन, चूडाकरण, यात्रा, विवाह, औषधि सेवन एवं वादविवाद इन नक्षत्रों में वर्ज्य है।

उग्र एवं क्रूर नक्षत्र- मंगलवार को भरणी, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, और पूर्वाभाद्रपद यदि हो तो अग्नि कार्य, छल-कपट, यन्त्र- तंत्र का प्रयोग, पशु वशीकरण इत्यादि निन्दित कार्य उत्तम माने जाते हैं।

मिश्र एवं साधारण नक्षत्र- बुधवार को कृत्तिका, विशाखा यदि हो तो व्यापार, अग्नि कार्य, अपहरण,शस्त्र, विषघात और अग्निहोत्र कार्य उत्तम माने जाते हैं।

क्षिप्र एवं लघु नक्षत्र- गुरुवार को अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित, इत्यादि नक्षत्रों में से हो तो वस्तुओं का क्रय- विक्रय, रतिकार्य, साहित्य, सगीत, कला, चित्रकला, शास्त्राध्ययन-ज्ञानार्जन एवं वाहन कार्य, औषधि दान आदि कार्य श्रेष्ठ हैं।

मृदु – मैत्र नक्षत्र- मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती यदि शुक्रवार को हो तो गीत- वाद्य कार्य, गृह सम्बम्धी कार्य, बीजवपन, आभूषण निर्माण व धारण, क्रीड़ा, मित्रता और शपथ ग्रहण आदि कार्य कल्याणकारी माने जाते हैं।

तीक्ष्ण एवं दारुण नक्षत्र – आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, और मूल नक्षत्र अभिचार कर्म, मारण, उच्चाटन के लिए अनुष्ठान हाथी घोडों का व वाहन प्रशिक्षण,बीजवपन, पौष्टिक कर्म, विद्यारम्भ, मनोरंजक कार्य करने चाहिए।

उपर्युक्त का वर्गीकरण मुख ज्ञान के आधार पर तीन श्रेणियों में किया गया है।

उर्ध्व मुख नक्षत्र -रोहिणी, आद्रा, पुष्य, उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाडा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरभाद्रपद उर्ध्वमुख नक्षत्र कहलाते हैं। इसमें देवालय निर्माण, गृह निर्माण, ध्वजारोहण, बगीचा निर्माण, यात्रा, राज्याभिषेक, और समस्त मांगलिक कार्य अभीष्ट फल देते हैं।

अधोमुख नक्षत्र -भरणी, कृतिका, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, मूल, पूर्वाषाढ़ा एवं पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र अधोमुख हैं। इसमें गणित, ज्योतिष, शिल्पकला का अध्ययन, रेलगाडी सुरंग, कूप, तालाब, खान, नलकूप, नींव का खनन, गड़े द्रव्य का निष्कासन पशुओं का क्रय- विक्रय, वाहन क्रय- विक्रय तथा प्रशिक्षण आदि कार्य उत्तम माने जाते हैं।

तिर्यङ्-पार्श्वमुख नक्षत्र -अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा और रेवती पार्श्वमुख नक्षत्र हैं, इसमें पशुओं का क्रय-विक्रय, वाहन क्रय- विक्रय व निर्माण तथा प्रशिक्षण, खेत में हल चलाना, यात्रा व पत्र व्यवहार के कार्य में उत्तम माने जाते हैं।

पञ्चक विचार- धनिष्ठा, शतभिषक, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती आदि पाँच नक्षत्र अनेक कार्यों में वर्ज्य हैं। इन नक्षत्रों में दक्षिण दिशा की यात्रा, प्रेतकार्य, काष्ठक्षेदन- काष्ठसंचय, पलंग निर्माण, ताम्बा एवं पीतल का संचय सर्वदा वर्जित है।

सुवर्णपाद नक्षत्र -रेवती, अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, सुवर्णपाद नक्षत्र हैं, इनका फल सर्व सौख्यप्रद है।

रजतपाद नक्षत्र -आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, मघा, पू. फाल्गुनी, उ. फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, ये रजतपाद नक्षत्र कहलाते हैं। इनका फल सौभाग्यदायक है।

लौहपाद नक्षत्र -विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, लौहपाद नक्षत्र हैं, इनका फल धनहानि है।

ताम्रपाद नक्षत्र- उ.षा., पू.षा., श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पू.भा., उ.भा. ताम्रपाद कहलाते हैं। इनका फल शुभ है।

चोरी गत वस्तुओं का लाभालाभ विचार-

अन्धाक्ष नक्षत्र	मध्याक्ष नक्षत्र	मन्दाक्ष नक्षत्र	सुलोचन नक्षत्र
रोहिणी, पुष्य, उ.फाल्गुनी, विशाखा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा, रेवती	भरणी, आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित, पूर्वाभाद्रपद	अश्वनी, मृगशिरा, आश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, शतभिषा	कृतिका, पुनर्वसु, पूर्व. फा. स्वाती, मूल, श्रवण, उत्तराभाद्रपद
पूर्व दिशा में शीघ्र लाभ।	पश्चिम दिशा में ज्ञात होने पर भी प्राप्ति नहीं।	दक्षिण दिशा में प्रयास से मिले	उत्तर दिशा में तथा प्राप्ति नहीं होती।

जैसा कि मुहूर्तचिन्तामणि में कहा गया है-

अन्धाक्षं वसुपुष्यधातृजलभद्वीशार्यमान्त्याभिधं

मन्दाक्षं रविविश्वमित्रजलपाश्लेषाश्विचान्द्रं भवेत् ।

मध्याक्षं शिवपित्रजैकचरणात्वष्ट्रेन्द्रविध्यन्तक

स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षो भगम् ।।

यदि आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल यदि शनिवार को हो तो निन्दित कार्य उत्तम माना जाता है।

योग- सूर्य-चन्द्रमा की गति-योग ही 'योग' होता है। योग 27 प्रकार के होते हैं। चन्द्रमा और सूर्य दोनों मिलकर जितने समय में एक नक्षत्र के बराबर दूरी तय करते हैं उसे योग कहते हैं, क्योंकि चन्द्रमा और सूर्य की दूरी ही योग है । ग्रहों की विशेष स्थितियों को भी योग कहा जाता है। तारामण्डल में चन्द्रमा के पथ को 27 भागों में विभाजित किया गया है, प्रत्येक भाग को नक्षत्र कहा गया है।जब सूर्य और चन्द्रमा की गति में 13° 20′ का अन्तर आने से एक योग बनता है। इस प्रकार तारामण्डल का 13° अंश 20' का एक भाग नक्षत्र है। इस प्रकार दूरियों के आधार पर बनने वाले 27 योगों के नाम क्रमश: निम्नलिखित हैं- विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, इन्द्र और वैधृति। इन 27 योगों में से कुल 9 योगों को अशुभ माना जाता है और उनमें सभी प्रकार के शुभ कार्यों को नहीं करना चाहिए। यथा- विष्कुम्भ, अतिगण्ड, शूल, गण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ और वैधृति। - **विष्कुम्भादि, शुभाशुभ विचार एवं अपवाद।**

करण विचार- तिथि का आधा करण होता है अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं- एक पूर्वार्ध में तथा एक उत्तरार्ध में। कृष्णपक्ष चतुर्दशी के उत्तरार्ध से करणों की प्रवृत्ति होती है।ए

करण के प्रकार- दो प्रकार के करण होते हैं- (1) चर करण (2) स्थिर करण ।

स्थिर करण- स्थिर करण 4 होते हैं- शकुनि, चतुष्पाद, नाग और किंस्तुघ्न। कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि, अमावस्या के पूर्वार्ध में चतुष्पाद, अमावस्या के उत्तरार्ध में नाग और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न करण होता है।

बव करण में पौष्टिक, बालव में पठन, पाठन, यज्ञ एवं दानादि कर्म कौलव- तैतिल में मैत्री व स्त्रीविषयक, गर में बीजारोपण व हलप्रवहण, वणिज में व्यापारिक, विष्टि में युद्ध व क्रूर कर्म, शकुनि में ओषधि निर्माण, उपयोग व सिद्धि, चतुष्पद में राज्य कार्य व अन्य शुभ कर्म और किंस्तुघ्न करण में शुभ कार्य प्रशस्त होते हैं।

चर करण - चर करण 7 होते हैं- यथा- बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के उत्तरार्ध से बव आदि चर करण होते हैं। प्रतिपदा के उत्तरार्ध

में बव, द्वितीया के पूर्वार्ध में बालव तथा उत्तरार्ध में कौलव इस प्रकार बव, बालव, कौलव,तैतिल, गर, वाणिज और विष्टि सात करणों की प्रवृत्ति होती है। यथा सूर्यसिद्धान्त में-

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीय तु चतुष्पदम् ।

किंस्तुघ्नतु चतुर्दश्या: कृष्णायाश्चापरार्धत: ॥

बवादीनि तत: सप्त चराख्यकरणानि च।

मासे उष्टकृत्व एकेकं करणानां प्रवर्तते ॥

तिथ्यर्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत् ।

एषा स्फूटगति: प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥ (सू.सि. स्पष्टाधिकार.67-69)

भद्राविचार- विष्टि करण को भद्रा कहते हैं। भद्रा में शुभ कार्य वर्जित माने गए हैं। मास के कुल आठ तिथ्यर्धों में भद्रा करण का वास होता है। शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि तथा पूर्णिमा का पूर्वार्द्ध, चतुर्थी तिथि एवं एकादशी का उत्तरार्द्ध, कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि एवं दशमी का उत्तरार्द्ध, सप्तमी तिथि और चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा का वास माना जाता है। इन आठ तिथियों में वास करने वाली भद्रा का अलग- अलग नामकरण किया गया है तथा ये क्रमशः कराली, नन्दिनी, रौद्री, सुमुखी, दुर्मुखी, त्रिशिरा, वैष्णवी तथा हंसी संज्ञा से जानी जाती हैं। तिथि के पूर्वार्द्ध में जो भद्रा होती है उसे दिवा भद्रा कहा गया है, जबकि तिथि के उत्तरार्द्ध में भद्रा हो तो वह रात्रि भद्रा कही जाती है। दिवा भद्रा दिन में तथा रात्रि भद्रा रात्रि में हो तो क्रमशः कही जाएगी और दिवा भद्रा दिन में तथा रात्रि भद्रा दिन में होने पर विपरीत क्रम से होती है। पक्ष के आधार पर भी 'भद्रा' का विशेष नामकरण किया गया है, कृष्ण पक्ष की भद्रा वृश्चिकी संज्ञा एवं शुक्ल पक्ष की तिथियों वाली भद्रा 'सर्पिणी से जानी जाती है। वृश्चिकी भद्रा की पुच्छ और सर्पिणि भद्रा के मुख में शुभ कार्य नहीं करने चाहिए।

भद्रा करण का अंग विभाग-

भद्रा की अन्तिम 3 घटियों में आवश्यक कार्य हो तो शुभ कार्य कर सकते हैं।

घटी	5	1	11	4	6	3
अंग	मुख	कण्ठ	हृदय	नाभि	कटि	पुच्छ
फल	कार्यनाश	मृत्यु	द्रव्यनाश	द्वन्द्व	बुद्धिनाश	कार्यसिद्धि

भद्रा काल को उसके अंगों मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, कटि प्रदेश तथा पुच्छ में निवास करती है।

शुभाशुभ – बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज आदि चर करण मांगलिक कार्यों के लिए प्रशस्त हैं।भद्रा पुच्छ की घ़डियाँ शुभ तथा शुभ कार्यों के लिए श्रेष्ठ होती है। अतः युद्धादि क्रूर कार्यों को इसके काल में कर सकते हैं।स्थिर चार करणों में पितृ सम्बन्धित कार्य शुभ होते हैं।

पक्ष ज्ञान - शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष। प्रत्येक मास में प्रायः तीस दिन होते हैं। तीस दिनों को चंद्रमा की कलाओं के घटने और बढ़ने के आधार पर चन्द्रमा के चक्र के दो भाग है। दो भाग यानी शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष में विभाजित किया गया है। एक पक्ष में पन्द्रह दिन होते हैं। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ अमावस्या के उपरांत 12 डिग्री हर दिन बढ़ने लगती हैं। इसलिए यह पक्ष रात में रोशनी से जगमगाता दिखाई पड़ता है। कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा पूर्णिमा के उपरांत प्रतिदिन क्रमशः 12 डिग्री अमावस्या तक घटता रहता है। अतः इस पक्ष में रात में चाँदनी नहीं होती है। ऋग्वेद के 10/85/19 वें मन्त्र में (नवो नवो भवति जायमानो....। लगध मुनि का "वेदांग ज्योतिष" और इस ग्रन्थ के षष्ठं श्लोक (माघ शुक्ल प्रपन्नस्य....

मास – दो पक्षों से मिलकर एक मास का निर्माण होता है। मास की गणना सूर्य और चन्द्र के आधार पर की जाती है। सूर्य के आधार पर गणना करने पर उसे सौर मास और चन्द्रमा से गणना करने पर चान्द्रमास की संज्ञा दी जाती है। चान्द्रमास की गणना शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से और सौर मास की गणना मेष संक्रान्ति से चैत्रादि 12 मास प्रारंभ होते हैं।

नक्षत्रों के अनुसार चन्द्रमास -

हमारे भारतीय बारह मासों के नाम गगन मण्डल के नक्षत्रों के नामों पर रखे गये हैं। जिस मास में जो नक्षत्र आकाश में प्रायः रात्रि के आरम्भ से अन्त तक दिखाई देता है या जिस मास की पूर्णिमा को चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है, उसी के नाम पर उस मास का नाम रखा गया है। यथा-चैत्र -चित्रा, स्वाति। वैशाख- विशाखा, अनुराधा। ज्येष्ठ- ज्येष्ठा, मूल। आषाढ़- पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़। श्रावण- श्रवणा, धनिष्ठा। शतभिषा, भाद्रपद- पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्रपद। आश्विन- रेवती, अश्विनी, भरणी। कार्तिक- कृतिका, रोहिणी। मार्गशीर्ष- मृगशिरा, आर्द्रा। पौष- पुनवर्सु, पुष्य। माघ-अश्लेषा, मघा। फाल्गुन-पूर्व फाल्गुनी, उत्तर फाल्गुनी, हस्त।

सौरमास- स्पष्ट सूर्य की एक दिन सम्बन्धी गति तुल्य काल को सौर दिन कहते हैं। मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन ये बारह राशियों को ही बारह सौरमास माना जाता है। जिस दिन सूर्य जिस राशि में प्रवेश करता है उसी दिन संक्रान्ति होती है और इस राशि प्रवेश से ही सौरमास का दूसरा मास प्रारंभ माना जाता है सूर्य के प्रवेशानुसार मेषादि 12 सौरमास हैं। सूर्य की एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रांति का समय सौरमास कहलाता है। अर्थात् सूर्य जितने समय तक एक राशि में रहता है, उसे सौर मास कहा जाता है। एक सौरमास में 30 दिन एवं 10 घण्टे होते हैं। इन्हीं बारह सौरमासों का एक सौर वर्ष होता है और सौरवर्ष में 365 दिन होते हैं। यथा सूर्यसिद्धान्त में

इसे भी समझे- दिन-रात्रि मान, षडशीतिमुख संक्रान्तियों का मान, अयन, विषुव तथा संक्रान्तियों का पुण्यकाल, यज्ञ, उपनयनादि षोडष संस्कार, ऋण का आदान-प्रदान सौरमास द्वारा ही किए जाते हैं।

ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या और उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते। (सू.सि.म. अ.13)

इन 12 संक्रान्तियों के अतिरिक्त 2 विषुव संक्रान्ति, 2 अयन संक्रान्ति और 4 विष्णुपदी संक्रान्तियाँ भी होती हैं। विषुव संक्रान्ति (मेष, तुला), अयन संक्रान्ति (कर्क, मकर), षडशीतिमुख संक्रान्ति (मिथुन 18 अंश, कन्या 14 अंश, धनु 6 अंश तथा मीन 22 अंश) तथा विष्णुपदी संक्रान्ति (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) का तथा सूर्य के मकर में संक्रमण काल से मिथुन राशि तक सूर्य उत्तरायण होते हैं एवं कर्क संक्रान्ति से धनु राशि तक सूर्य दक्षिणायन होते हैं। ये समस्त कालमान सौरमान पर ही आधारित है।

मेषादि देवभागस्थे देवानां याति दर्शनम्।
असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसञ्चर: ॥ (भू.अ.45)

मेषादि छ: राशियों में स्थित रहने पर सूर्य का दर्शन देव भाग में और तुलादि छ: राशियों में स्थित रहने पर सूर्य का दर्शन असुरों के भाग में होता है । मेषादि से कन्यान्त पर्यन्त छ: राशियों में भ्रमण करता हुआ सूर्य विषवुत (नाडी) वृत्त से उत्तर में ही रहता है अत: लगभग 6 मास पर्यन्त सूर्य का दर्शन उत्तर गोल में होता है । इसी प्रकार तुलादि से मीनान्त पर्यन्त 6 राशियों में सूर्य नाडी वृत्त से दक्षिण में रहता है अत: 6 मास पर्यन्त सूर्य का दर्शन दक्षिण गोल में ही होता है। सूर्य की गति के अनुसार अहोरात्रादि सौरमान होते हैं । सूर्य का एक चक्र भ्रमण एक सौर वर्ष होता है ।

चान्द्रमास- अमात्ताद् मातं तु चान्द्रमासः। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ अमावस्या के पश्चात् शुक्ल पक्ष प्रतिपदा को चन्द्र नक्षत्र विशेष में एक कला हर दिन बढ़ते हुए पूर्ण चन्द्र रोशनी से जगमगाता दिखाई पड़ता है। पुनः कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा पूर्णिमा के उपरांत प्रतिदिन क्रमशः एक कला अमावस्या तक घटता रहता और दृष्टिगोचर नहीं होता है। पञ्चाङ्ग में मासों की गणना चान्द्रमास से 12 चन्द्र मासों का एक वर्ष सौर वर्ष से लगभग दश दिन छोटा होता है। इस प्रकार 3 वर्षों में यह अन्तर एक चन्द्रमास के बराबर हो जाता है। अतः प्रति 3 वर्ष में एक चान्द्र मास अधिक हो जाता है। और उस बढे हुए मास को तेरहवां मास, अधिक मास, मलमास, पुरुषोत्तम मास आदि नामों से संबोधित किया जाता है। इस प्रकार जिस मास में सूर्य संक्रान्ति नहीं होती है। उसे मलमास या फिर अधिक मास कहा जाता है। तथा चन्द्र मास में दो संक्रांतिया पड़ जाए वह क्षय कहलाता है। और जिस वर्ष क्षयमास आता है उस वर्ष दो अधिक मास आते हैं। क्षय मास के 3 महीने पहले एक अधिक मास और 3 माह बाद दूसरा अधिक मास आता है। 19 वर्षों के अंतराल में क्षय मास आने की संभावना होती है। चान्द्र- यह 354 दिनों का होता है। अधिकतर मास इसी संवत्सर द्वारा जाने जाते हैं। यदि मास वृद्धि हो तो इसमें तेरह मास अन्यथा सामान्यतया बारह मास होते हैं। धर्म-कर्म, तीज-त्योहार और लोक-व्यवहार में इस मास की ही मान्यता अधिक है।

यज्ञ, आयु, स्त्रीगर्भ विचार, प्रायश्चित कर्म और सम्पत्ति विभाजन आदि सावन मास के अनुसार करने चाहिए।

सावन मास- "उदयादुदयं भानोः भूमिसावनवासरः।" आर्ष वचन" अर्थात् सावन मान सूर्योदय पर आधारित होता है। दो सूर्योदयों के मध्य का काल सावन दिन होता

भारतीयकालः	**पाश्चात्यकालः**
1प्राणः = 10 विपलानि =	4 सेकेण्ड
6 प्राणाः = 1 विनाडी = 1 पलम् =	24 सेकेण्ड = $\frac{5}{2}$ मिनट
60 विनाडिकाः = 1 नाडी = 1 दण्डः =	24 मिनट
60 नाडिका = एकं नाक्षत्रदिनम् = 60 दण्डाः =	24 घण्टाः
$\frac{5}{2}$ नाड्यः = $\frac{5}{2}$ दण्डाः =	1 घण्टा = 60 मिनट
30 नाक्षत्राहोरात्र = 1मासः =	1 मास
12 मासाः = 1वर्षम् =	1 वर्ष

इस प्रकार एक अहोरात्र में 24 घण्टे (60 घटी) मानकर 30 दिनों का एक सावन मास होता है तथा 12 सावन मासों का एक सावन वर्ष होता है। यह सावन वर्ष 360 दिनों का होता है। यथा- आर्ष वचन-**"तत् त्रिंशता भवेन्मास: सावनो·कोदियैस्तथा" (सू. सि.म.अ.12)**

नाक्षत्र मास में नक्षत्र शान्ति, जलपूजन आदि कार्य करने चाहिए।

नाक्षत्रमास- नक्षत्रमण्डल के दैनिक भ्रमण का कालमान एक नाक्षत्र दिन होता है। वसन्त सम्पात बिन्दु जिस क्षण याम्योत्तर वृत्त पर आता है, उस क्षण से वह बिन्दु पुनः याम्योत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण तक के समय को नाक्षत्र दिन कहते हैं। अर्थात् चन्द्रमा अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त के नक्षत्र में विचरण करता है वह काल नक्षत्रमास कहलाता है। (एक नक्षत्र का भोग एक दिन) यह लगभग 27 दिनों का होता है इसीलिए 27 दिन का एक नाक्षत्रमास कहलाता है। सूर्यसिद्धान्त में आर्ष वचन- **"नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ।"**

क्षय- अधिमास- सौरवर्ष का मान 365 दिन, 15 घटी, 30 पल, व 31 विपल होता हैं और चान्दवर्ष का मान 354 दिन, 22 घटी, 1 पल, व 23 विपल होता है। अतः चन्द्रवर्ष सौर वर्ष से 10 दिन, 53 घटी, 20 पल, 7 व विपल कम होता है। अतः इस अन्तर की पूर्ति के लिए तथा चन्द्र वर्ष व सौर वर्ष में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रति 3 वर्ष में एक अधिक चान्द्रमास का तथा एक बार 141वर्षों के बाद और दूसरी बार 19 वर्षों के बाद क्षयमास की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार जिस मास में चन्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है, वह अधिमास कहलाता है तथा जिस चान्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्तियाँ होती है वह क्षय मास कहलाता है। क्षयमास व अधिकमास को मलमास और पुरुषोत्तम मास कहते हैं। यथा-"**असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः**"।

अधिकमास में यज्ञोपवीत, विवाह, वधुप्रवेश, ग्रहारम्भ, गृहप्रवेश, मुंडन, कूप निर्माण, प्रतिष्ठा आदि मांगलिक कार्य वर्जित हैं लेकिन सन्ध्या, मंत्र, यज्ञ- हवन, श्रीमद् देवीभागवत, श्री भागवत पुराण, गीता पारायण, नृसिंह भगवान की कथा आदि के करने एवं श्रवण के लिए बहुत ही प्रशस्त माना जाता है।

संवत्सर विचार-

बारह महीने का कालविशेष को ही संवत्सर कहते हैं। भारतीय वर्ष गणना प्रणालियों में प्रत्येक वर्ष को संवत् कहा जाता है। हिन्दू , बौद्ध , और जैन परम्पराओं में कई संवत् प्रचलित हैं जिसमें विक्रमी संवत एवं शक संवत् प्रसिद्ध हैं। ब्राह्म, दैव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, और बार्हस्पत्यादि काल हैं परन्तु **बार्हस्पत्य एवं चान्द्र मान से संवत्सर की गणना की जाती** है। प्रभवादि संवत्सरों का फल उनके

नामानुगण होता है। शालिवाहन शक और विक्रम संवत् में 135 का अन्तर होता है तथा वर्तमान शक् संवत् में 135 जोड़ने पर विक्रम संवत्सर प्राप्त होता है।

यथा- 1945+135=2080 विक्रम संवत्सर।

यथा- संवत् 2023+9= 2032 प्राप्त संख्या को 60 से विभाजित करने पर 33 लब्धि तथा शेष 52। इस प्रकार 52 संवत्सर समाप्त हो गए और शुभकृत संवत्सर वर्तमान में है।

वर्तमान संवत् में 9 जोड़कर लब्ध संख्या को 60 से विभाजित करने पर गत संवत्सर प्राप्त होता है।

विश्व में प्रचलित ईस्वी संवत् का ये 2023 वर्ष है। पंचांगों में संवत् प्रचलित हैं, तथा भारत के बहुत से क्षेत्रों में विक्रम संवत् प्रचलित है। विक्रम संवत् का आरम्भ मार्च एवं अप्रैल से होता है। यथा- मार्च व अप्रैल 2023 से विक्रमी संवत् 2080 है।

संवत् या तो कार्तिक कृष्ण पक्ष से आरम्भ होते हैं या चैत्र कृष्ण पक्ष से तथा कार्तिक से आरम्भ होने वाले संवत् को कर्तक संवत् कहते हैं। संवत् में अमावस्या को अंत होने वाले मास (अमावस्यान्त मास) या पूर्णिमा को अन्त होने वाले मास (पूर्णिमान्त) मास कहा जाता है। किसी संवत् में पूर्णिमान्त मास का और किसी में अमावस्यान्त मास का प्रयोग होता है । भारत के अलग-अलग स्थानों पर एक ही नाम की संवत् परम्परा में पूर्णिमांत या अमावस्यांत मास का प्रयोग हो सकता है। विक्रम संवत् का आरम्भ चैत्र मास के कृष्ण पक्ष से होता है। कार्तिक कृष्ण पक्ष दिवाली से आरम्भ होता है , इस दिन से वर्ष का आरंभ होने वाले संवत् को विक्रम संवत् (कर्तक) कहा जाता है। संवत् के अनुसार एक वर्ष की अवधि को भी संवत् कहा जा सकता है।

युगों के अधिपति-

12 युग	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
स्वामी	विष्णु	बृहस्पति	इन्द्र	अग्नि	विश्वकर्मा	अहिर्बुध्न्य	पितर	विश्वेदेवा	चन्द्र	इन्द्राग्नि	अश्वनी	भग

ऋतुज्ञान चक्र-

मेषादि दो-दो राशियों का भोगकाल ऋतु कहलाता है। इस प्रकार कालगणना में एक वर्ष को छः ऋतुओं में विभाजित किया गया है। जैसा कि सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है - **"द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः"** सौर गणना के अनुसार दो संक्रान्तियों की और दो चन्द्र मास की भी एक ऋतु होती है।

यथा- **सूर्य एवं चान्द्र मास के अनुसार वसंतादि ऋतु चक्र-**

ऋतुएँ	वसन्त	ग्रीष्म	वर्षा	शरद	हेमंत	शिशिर
सौरमास	मीन,मेष	वृषभ, मिथुन	कर्क, सिंह	कन्या, तुला	वृश्चिक, धनु	मकर, कुंभ
चान्द्रमास	चैत्र	ज्येष्ठ	श्रावण	आश्विन	मार्गशीर्ष	माघ
मास	वैशाख	आषाढ़	भाद्रपद	कार्तिक	पौष	फाल्गुन

अयन ज्ञान – उत्तरायण और दक्षिणायन।

अयन का शाब्दिक अर्थ चलना। अर्थात् सूर्य कर्कादि छः राशियों में दक्षिण दिशा की ओर गमन दक्षिणायन तथा मकर आदि छः राशियों में उत्तर दिशा की ओर गमन उतरायण काल कहलाता है। क्रान्तिवृत्त का उत्तर एव दक्षिण गोल विभाजन ही उत्तरायण और दक्षिणायण कहलाता है। सौर-वर्ष के दो भाग हैं- उत्तरायण छः मास का और दक्षिणायन भी छः मास का। इस प्रकार दो अयन उत्तरायण और दक्षिणायन होते हैं। उत्तरायण को देवताओं का दिन एवं दक्षिणायन में देवताओं की रात्रि होती है। श्रविष्ठादि (धनिष्ठा के आरम्भ) में सूर्य व चन्द्रमा उत्तर की ओर गमन (उत्तरायण) करते हैं तथा सार्पार्ध (आश्लेषा के आधे) में दक्षिण की ओर प्रवृत्ति (दक्षिणायन) होते हैं। सर्वदा सूर्य माघ और श्रावण मासों में क्रमशः उत्तर एवं दक्षिण की ओर भ्रमण करता है।

उत्तरायण तीर्थ यात्रा, प्रतिष्ठा, यज्ञोपवीत, ग्रहप्रवेश, कूप निर्माण, नूतन गृहप्रवेश और विवाह संस्कारादि आदि कार्यों के लिए शुभ समय है।

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माधस्तपः शुक्लोऽयनं ह्ययुदक्।। (याजुष. ज्यो. 6)

उत्तरायण - मकर से मिथुन पर्यन्त सूर्य उत्तरायण होता है।(माघ से आषाढ़) यह समय देवताओं का दिन माना जाता है। शिशिर वसन्त और ग्रीष्म ऋतुएँ उत्तरायण को सुशोभित करती हैं।

दक्षिणायण- सूर्य कर्क से धनु राशि पर्यन्त दक्षिणायन में रहता है।(श्रावण से पौष) सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करता है तब सूर्य दक्षिणायन होता है। वर्षा, शरद और हेमन्त तीन ऋतुएँ इस समय अपनी सुषमा विखेरती हैं। इस अयन के अधिपति पितृ हैं। दक्षिणायन में उग्र देवताओं की प्रतिष्ठा, व्रत और उपवास का समय होता है। इस समय व्रत और उपासना करने से रोग और कष्ट समाप्त होते हैं।

इस समय विवाह और उपनयन आदि संस्कार वर्जित हैं, परन्तु **यदि सूर्य वृश्चिक राशि में हो तो मार्गशीर्ष (अगहन) मास में ये सब किया जा सकता है। उत्तरायण में मीन मास में विवाह वर्जित है।**

महीनों के नाम पूर्णिमा के दिन चंद्रमा जिस नक्षत्र में रहता है:

- चैत्र : चित्रा, स्वाति।
- वैशाख : विशाखा, अनुराधा।
- ज्येष्ठ : ज्येष्ठा, मूल।
- आषाढ़ : पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, सतभिषा।
- श्रावण : श्रवण, धनिष्ठा।
- भाद्रपद : पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र।
- आश्विन : अश्विन, रेवती, भरणी।
- कार्तिक : कृतिका, रोहणी।
- मार्गशीर्ष : मृगशिरा, उत्तरा।
- पौष : पुनर्वसु, पुष्य।
- माघ : मघा, अश्लेषा।
- फाल्गुन : पूर्वाफाल्गुन, उत्तराफाल्गुन, हस्त।

अधिवर्ष में, चैत्र मे 31 दिन होते हैं और इसकी शुरुआत 21 मार्च को होती है। वर्ष की पहली छमाही के सभी महीने 31 दिन के होते हैं, जिसका कारण इस समय कांतिवृत्त में सूर्य की धीमी गति है। महीनों के नाम पुराने, हिन्दू चन्द्र-सौर पंचांग से लिए गये हैं इसलिए वर्तनी भिन्न रूपों में मौजूद है और कौन सी तिथि किस कैलेंडर से संबंधित है इसके बारे मे भ्रम बना रहता है।

शक् युग, का पहला वर्ष सामान्य युग के 78 वें वर्ष से शुरु होता है, अधिवर्ष निर्धारित करने से शक् वर्ष में 78 जोड़ दें- यदि ग्रेगोरियन कैलेण्डर में परिणाम एक अधिवर्ष है, तो शक् वर्ष भी एक अधिवर्ष ही होगा।

वर्ष को संवत्सर कहा जाता है। जैसे प्रत्येक माह के नाम होते हैं उसी तरह प्रत्येक वर्ष के नाम अलग अलग होते हैं। जैसे बारह माह होते हैं उसी तरह 60 संवत्सर होते हैं। संवत्सर अर्थात बारह महीने के कालविशेष को ही संवत्सर कहते हैं। भारतीय संवत्सर पाँच प्रकार के होते हैं। इनमें से मुख्यतः तीन हैं- सावन, चान्द्र तथा सौर।

60 संवत्सरों के नाम तथा क्रम इस प्रकार हैं-

(1) प्रभव, (2) विभव, (3) शुक्ल, (4) प्रमोद, (5) प्रजापति, (6) अंगिरा, (7) श्रीमुख, (8) भाव, (9) युवा, (10) धाता, (11) ईश्वर, (12) बहुधान्य, (13) प्रमाथी, (14) विक्रम, (15) विषु, (16) चित्रभानु, (17) स्वभानु, (18) तारण, (19) पार्थिव, (20) व्यय, (21) सर्वजित, (22) सर्वधारी, (23) विरोधी,

(24) विकृति, (25) खर, (26) नन्दन, (27) विजय, (28) जय, (29) मन्मथ, (30) दुर्मुख, (31) हेमलम्ब, (32) विलम्ब, (33) विकारी, (34) शर्वरी, (35) प्लव, (36) शुभकृत्, (37) शोभन, (38) क्रोधी, (39) विश्वावसु, (40) पराभव, (41) प्लवंग, (42) कीलक, (43) सौम्य, (44) साधारण, (45) विरोधकृत्, (46) परिधावी, (47) प्रमादी, (48) आनन्द, (49) राक्षस, (50) नल, (51) पिंगल, (52) काल, (53) सिद्धार्थ, (54) रौद्रि, (55) दुर्मति, (56) दुंदुभि, (57) रुधिरोद्गारी, (58) रक्ताक्ष, (59) क्रोधन (60) क्षय।

गण्डान्त-

गण्डान्त नाम सन्धिविशेष। किसकी सन्धि तिथि-नक्षत्र-लग्नादि का सन्धिकाल। ये सन्धि तीन प्रकार की होती हैं। इन गण्डान्तों की शान्ति भी करनी चाहिए यथा अथर्ववेद-

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात्परि पाह्येनम्।

स ग्राह्याः पाशान्वि चृत प्रजानन्तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे॥ (अथर्ववेद.6.112.1)

तिथिगण्डान्त- तिथिगण्डान्त नाम तिथि का सन्धिकाल। इस सन्दर्भ में पूर्णा (पञ्चमी, दशमी, पञ्चदशी) नन्दा (प्रतिपत्, षष्ठी, एकादशी) इनका विचार करते हैं। पूर्णातिथियों की अन्तिम एक घटी, नन्दा तिथियों की आद्य एक घटी दोनों मिलकर दो घटी गण्डान्त काल होता है।

तिथि	अघ.		आ.घ.	तिथि	कुल घटी
पञ्चमी	1	+	1	षष्ठी	2
दशमी	1	+	1	एकादशी	2
पञ्चदशी	1	+	1	प्रतिपत्	2

नन्दा तिथेश्च नामादौ पूर्णायाश्च तथान्तिके।

घटिकैका शुभे त्याज्या तिथिगण्डा घटि द्वयम्।।

नक्षत्र गण्डान्त- ज्येष्ठा-रेवती-आश्लेषा नक्षत्रों की अन्त्य दो घटी एवं मूला-अश्वनी-मघा नक्षत्रों की आद्य (प्रथम) दो घटी गण्डान्त संज्ञक होती है।

नक्षत्र	अ. घ.		आघ.	नक्षत्रम्	कुल घटी

रेवती	2	+	2	अश्विनी	4
आश्लेषा	2	+	2	मघा	4
ज्येष्ठा	2	+	2	मूला	4

ज्येष्ठा श्लेषा रेवतीनां नक्षत्रान्ते घटीद्वयम्।

आदौ मूलमघाश्विन्या भगण्डे घटिका द्वयम् ।।

लग्नगण्डान्त- कर्क-वृश्चिक-मीन-की अन्त्य अर्ध घटी और सिंह-धनु-मेष राशि के आद्य की अर्ध घटी गण्डान्त संज्ञक होती हैं।

लग्न	अ.घ.		आद्य.	लग्न	स.घ.
कर्क	½	+	½	सिंह	1
वृश्चिक	½	+	½	धनु	1
मीन	½	+	½	मेष	1

यथा- मीन वृश्चिक कर्कान्ते घटिकार्द्ध परित्यजेत्।

आदौ मेषस्य चापस्य सिंहस्य घटिकार्द्धकम्।।

इस इकाई में पञ्चाङ्ग के घटकों को उदाहरण सहित विस्तृत रूप से समझाया गया हैं। जिससे छात्र सरल रूप से समझ सकें और पञ्चाङ्ग का उपयोग कर सकें।

इकाई समाप्त

प्रश्न-1. पंचाग के कितने अङ्ग होते है? पाँच ।

प्रश्न-2. कितनी तिथियाँ होती हैं? तीस (30)।

प्रश्न-3. स्थिर करण कितने प्रकार के होते हैं ? **चार** (4)।

प्रश्न-4. ऋतुएँ कितने प्रकार की होती हैं? **छः प्रकार** (6)।

प्रश्न-5. तिथियों को संज्ञा दी गई है? **नन्दा-भद्रा - जया – रिक्ता- पूर्णा** ।

प्रश्न-6.गण्डान्त कितने प्रकार के होते हैं? **तीन** (3)।**तिथि- नक्षत्र- लग्न।**

प्रश्न-7. संवत्सर कितने होते हैं? 60 **संवत्सर**।

प्रश्न-8. तिथि, करण, विवाह, मुण्डन, जातकर्म व्रत-उपवास, यात्रा की क्रियाएँ तथा अन्य सभी कार्य, किस मान के अनुसार होते हैं? **चान्द्रमान से**।

प्रश्न-9. संक्रान्तियों का पुण्यकाल किस मान से ज्ञात किया जाता है? **सौरमान से** ।

प्रश्न-10. एक तिथि में कितने अंश होते हैं? 30 **अंश**।

निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिए-

प्रश्न-1. तिथि का आधा .....होता है । **करण** ।

प्रश्न-2.सूर्य से चन्द्रमा के .....आगे जाने पर 1 तिथि होती है।**12 अंश**

प्रश्न-3. चैत्रादि..... होते हैं। **12 मास** ।

प्रश्न-4. सूर्य कर्कादि छः राशियों में दक्षिण दिशा की ओर गमन .....तथा मकर आदि छः राशियों में उत्तर दिशा की ओर गमन .....काल कहलाता है। **दक्षिणायन - उत्तरायण**

बोध प्रश्न-

1. पचाङ्ग का सामान्य परिचय दीजिए।
2. गण्डान्त की विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिए।
3. उत्तरायण तथा दक्षिणायन में करने योग्य कार्यों की व्याख्या कीजिए।
4. चोरी गत (नष्ट द्रव्य) वस्तुओं का लाभालाभ विचार नक्षत्रों के आधार पर विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
5. पञ्चकों का विचार कैसे किया जाता है वर्णन कीजिए?
6. जन्म के समय नक्षत्र पादों का कैसे विचार किया जाता है?
7. तिथियों के अधिपतियों का तिथि सहित नाम लिखिए।

संवत्सर- गुरु के मध्यम गति से एक राशि में भोग करने के समय को एक प्रभवादि संवत् का काल कहते हैं। ऐसा संहिता शास्त्र के विद्वान कहते हैं। यथा-

बृहस्पतेर्म ध्यामुराशिभोगं सांवत्सरं सांहितिका वदन्ति ॥ (सि.शि.)

विक्रमसंवत्ज्ञान- जब वर्तमान कलियुग के 3044 वर्ष व्यतीत हो गए तब विक्रमार्क संवत् प्रारम्भ हुआ था। गुजरात(वर्षारम्भ कार्तिक तथा मास अमान्त) एवं बंगाल (वर्षारम्भ वैशाख तथा मास पूर्णिमान्त) को छोड़कर सम्पूर्ण उत्तरभारत(वर्षारम्भ चैत्र तथा मास पूर्णिमान्त) में उपयोग किया जाता है यथा-

विक्रमसंवत्ज्ञान यदा गतकलेरब्धिवेदाभ्रपावकैर्गताः।

श्रीविक्रमार्कराज्यस्य संवत्प्रारम्भकः स्मृतः ।।

शकवर्ष का ज्ञान-

विक्रमादित्यराज्येषु पञ्चत्रिंशोत्तरं शतम्।

पातयित्वा भवेच्छाकः स शाकः शालिवाहनः ।।(बृ.वै.र.)

विक्रम संवत् संख्या में 135 घटाने पर शक संवत् प्राप्त होता है और शक संवत् में 135 जोडने पर विक्रम संवत् प्राप्त होता है । अर्थात् विक्रम संवत् के 135 वर्ष बाद शक वर्ष आरम्भ हुआ था। दक्षिण भारत में इसका उपयोग करते हैं। नर्मदा नदी के उत्तरभाग में पूर्णिमान्त और दक्षिण में अमान्त मासों का प्रचलन हैं।

हिजरी सन् का ज्ञान ईशाख्यशाकेषु त्रिनागबाणमूनं भवेद्धिजरिनाम्नि शाकः ।।(बृ.दै.र)

ईसवी वर्ष में 583 को घटाने पर हिजरी सन् आता है। अर्थात् इसका आरम्भ ईसवी के 583 वर्ष बाद हुआ था।

फसली शक ज्ञान- तच्छाककेष्वनितमत्र दिङ्नमितं शाको भवेत्सः कालीभिधाख्यः ।।16 ।।

हिजरी सन् में से 10 घटाने पर फसली सन् प्राप्त होता है।

बंगला सन् का ज्ञान- फसली सन् में से एक घटाने पर बंगला सन् प्राप्त होता है। यथा-

एकोनितं फासिलिनाम्नि शाके शाको भवेत्स बंगलाभिधाख्यः ।।17।। (बृ.दै.र)

विक्रमसंवत् से संवत्सर ज्ञान-

वर्तमान विक्रम संवत्सर में 9 जोडकर तथा उसमें 60 का भाग देने पर जो अंक शेष रहता है, उससे विद्वान् लोगों को प्रभवादि संवत्सर के नाम क्रमशः समझना चाहिए। यथा-

संवत्कालो ग्रहयुतः कृत्वा शून्यरसैर्युतः। शेषाः संवत्सरा ज्ञेयाः प्रभवाद्या बुधैः क्रमात् ।।18 ।।(बा.बो.ज्यो.)

शक से संवत्सरज्ञान- वर्तमान शालिवाहन शक में बारह का योग कर साठ का भाग देने से जो अंक शेष रहे उस से विद्वानों को प्रभवादि संवत्सर को क्रमशः समझना चाहिए। यथा-

शकेन्द्रकालोऽर्कयुतः कृत्वा शून्यरसैर्हतः शेषः संवत्सरो ज्ञेयः प्रभवादिर्बुधैः क्रमात् ।।(बा.बो.ज्यो)

मुहूर्त्तविचार- **वास्तु प्रदीप के अनुसार विशेष शुभमुहूर्त**-1 शनिवार, 2 स्वाती नक्षत्र, 3 सिंह लग्न, 4 शुक्ल पक्ष, 5 सप्तमी, 6 शुभयोग और सावन मास ये सात सकार होते हैं। इन सात सकारों में जो गृह निर्माण करता है उसे सर्वदा धन की प्राप्ति होती है। उसके पास हाथी (वाहन) धन- धान्य का सर्वदा उपभोग करता है। यथा-

गृहारम्भस्य प्राशस्त्यमुक्तं वास्तुप्रदीपे

शनौ स्वाती सिंहलग्ने शुक्लपक्षश्च सप्तमी।

शुभयोगः श्रावणश्च सकाराः सप्त कीर्तिताः ।।

सप्तानां यो गता वास्तुः पुत्रवित्तप्रदः सदा ।

गजश्च धनधान्यानि पुरे तिष्ठन्ति सर्वतः ।।(वा.प्र.)

सर्वकार्यारम्भमुहूर्त्त-

पुनर्वसु-हस्त-अश्विनी-पुष्य-अभिजित्- मृगशिरा रेवती-चित्रा-अनुराधा तीनों उत्तरा-रोहिणी ये नक्षत्र, जया व पूर्णा तिथि, बुध-गुरु-शुक्र के दिन में घूमने वाले सभी यन्त्र चक्कियाँ-रहट-चुह्ली-गाड़ी-नाव-आसन-चारपाई-चौकी-शिल्पकार्य - द्वारशाखा रोपण आदि में पञ्चकों को त्यागकर इन समस्त कार्यों के लिए शुभ मुहूर्त्त है यथा-

अदितिक्षिप्रमृदुध्रुवसंज्ञके भृगुजवाक्पतिपूर्णजयातिथौ।

शकटनावसुखासनशिल्पकं भ्रमणकाष्ठरहाण्टकसिद्धिदम् ।।(वा.सौ.)

वास्तुपूजन में दिशाविचार-

सूर्य की स्थिति यदि सिंह, कन्या एवं तुला राशि पर हो तो नैर्ऋत्य कोण में वास्तुपूजा करनी चाहिए। यदि सूर्य वृश्चिक, धनु एवं मकर में हो तो वायव्य कोण में तथा कुम्भ, मीन एवं मेष में सूर्य होने पर ईशान कोण में वास्तु पूजा होनी चाहिए। वृष, मिथुन तथा कर्क राशि में सूर्य होने पर आग्नेय कोण में वास्तु-पूजा प्रशस्त होती है।

सिंहादले: कुम्भधरावृषाश्च त्रिभिस्त्रिभेडर्के च बुधैर्निरुक्ता: ।

रक्षोमरुच्छम्भुकृशानदिक्षु सुखापयित्री खलु वास्तुपूजा ॥31॥

गृहारम्भ के समय शकुन विचार-

यदि गृहारम्भ के समय ब्राह्मण, कन्या एवं बालक के साथ युवा स्त्री दिखाई पड़े तो उस गृह में सुख-सामग्री होती है। सुन्दर वेष धारण किये हुए वेश्या एवं धुले बस्त्रो के साथ धोबिन के दिखाई पड़ने पर गृह में सुवर्ण की वृद्धि होती है।

सुखानि द्रव्याणि भवन्ति तत्र विप्राश्च बालास्तरुणी सबाला।

वेश्या सुवेधा रजकी सुवस्त्री दृष्टास्तदा तत्र हिरण्यवृद्धि: ॥32॥

यदि गृहारम्भ के समय भेरी, मृदङ्ग एवं दुन्दुभि आदि वाद्यों के शब्द एवं शंख की मंगलध्वनि सुनाई पड़े तो कुछ विद्वानों के अनुसार गृहस्वामी को धन या फल की प्राप्ति होती है एवं उस गृह में सुवर्ण आदि समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

भेरीमृदङ्गानकदुन्दुभीनां शब्दैश्ष शब्डस्थ च मङ्गलानि।

वदन्ति केचित् द्रविणं फलं वा तदा हिरण्यादिसमृद्धयः स्थुः ॥33॥

गृहारम्भ में मास विचार -

प्रशस्त मास – वृद्धनारदमत से कालशुद्धिविचार- कालशुद्धि का विचार-पुर, प्रासाद, गृह का आरम्भ एवं समाप्ति विष्णु के उत्थान में अर्थात् हरिबोधिनी एकादशी के बाद और हरिशयनी एकादशी के पूर्व करें। चैत्र मास में गृहादि बनाने से शोक, वैशाख में धनलाभ, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में पशु हरण, श्रावण में पशुवृद्धि, भाद्रपद में शून्य, आश्विन में कलह, कार्तिक में भृत्यनाश मार्गशीर्ष और पौष में अन्नलाभ, माघ में अग्निभय तथा फाल्गुन में श्री लाभ होता है। यथा-

आरम्भं च समाप्तिं च प्रासादपुरसद्मनाम्।
उत्थिते केशवे कुर्यान्न प्रसुप्ते कदाचन ॥
चैत्रे शोककरं गृहादिरचितं स्यान्माधवेऽर्थप्रदं
ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद्वृद्धिदं श्रावणे।
शून्यं भाद्रपदे त्विषे कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके
धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीर्माघे श्रियं फाल्गुने ॥बृ.वा.मा.48-49॥ ॥

मतान्तर से-

शोको धान्यं मृतिपशुहृती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो।
युद्धं भृत्यक्षतिरथफलं श्रीश्च वह्नीर्भयञ्च।।
लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण।
चैत्रादृचे मुनिभिरसकृद्वास्तुशास्त्रेषु विज्ञैः ।।

नारद के मत से मासशुद्धिविचार-

सौम्य-फाल्गुन-वैशाख-माघ-श्रावणकार्तिकाः।
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्राऽऽरोग्यफलप्रदाः ॥बृ.वा.मा.50॥

मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक में गृह आदि का निर्माण करने से गृहपति को पुत्र तथा स्वास्थ्य लाभ होता है।

योगेश्वराचार्य के अनुसार त्याज्य मास-

चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, माघ महीनों में गृहनिर्माण नहीं करना चाहिए। यथा-

आषाढ-चैत्राश्वयुजोर्जमाघज्येष्ठेषु सप्रौष्ठपदेषु नूनम्।
निकेतनानां घटनं नृपाणां योगेश्वराचार्यमते न शस्तम् ॥बृ.वा.मा.52॥

ग्राह्यमास-

गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत्

वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥

कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम् ।

कन्यारोगं तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम् ॥

कार्मुके तु महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः।

कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्य भयावहम् ॥53-55॥

मेष के सूर्य (वैशाख) में गृहनिर्माण शुभ, वृष (ज्येष्ठ) में धनवृद्धि, मिथुन (आषाढ़) में मृत्यु, कर्क (श्रावण) में शुभ, सिंह (भाद्रपद) में भृत्यवृद्धि, कन्या (आश्विन) में रोग, तुला (कार्तिक) में धनवृद्धि, धन (पौष) में महा हानि, मकर (माघ) में धनागम, कुम्भ (फाल्गुन) में रत्नलाभ और मीन (चैत्र) में भयप्रद होता है।

शिलान्यास मुहूर्त - नींव खनन हो जाने के पश्चात् नींव को भरने का कार्य प्रारम्भ होता है। प्रारम्भिक ईंट अथवा पत्थर की प्रथम शिला रखने को ही शिलान्यास कहते हैं। तत्पश्चात् गृह निर्माण करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

वसिष्ठ के अनुसार पक्षशुद्धि विचार-

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्।

गृहनिर्माणकार्येषु पक्षशुद्धिं विचिन्तयेत्॥

गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणोर्दृश्यमानयोः।

शुक्लपक्षे दिवाकार्यं न निर्माणञ्च रात्रिषु ॥बृ.वा.मा.56-66॥

शुक्लपक्ष में गृहारम्भ करने से सभी प्रकार के सुख, कृष्ण- पक्ष में चोरों का भय होता है। यदि गुरु शुक्र उदयी हों तो शुक्ल पक्ष के दिनों में गृहारम्भ करना चाहिए रात्रि में नहीं।

गृहारम्भ में निषिद्ध तिथि-

दारिद्र्यं प्रतिपत् कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी ।

अष्टम्युच्चाटनी ज्ञेया नवमी शस्त्रघातिनी ॥

अमायां राजभीतिः स्याच्चतुर्दश्यां स्त्रियः क्षयः ।

एवं निषिद्धतिथयो गृहारम्भे प्रकीर्तिताः ॥

रिक्ताष्टमीदर्शरवीन्दुभौमा विवर्जनीया विदुषा प्रयत्नात्।

चित्रानुराधामृगरेवतीषु स्वातौ च तिष्ये च तथोत्तरासु ॥

ब्राह्मे घनिष्ठाशततारकासु गेहादिकारम्भणमामनन्ति।

श्रीभार्गवस्यात्र मुनेर्मतेन प्रोक्ताविशुद्धास्तिथयोऽथ वाराः ॥बृ.वा.मा. 67-70॥

गृहारम्भ में निषिद्ध तिथि- प्रतिपदा को गृह निर्माण का आरम्भ करने से दरिद्रता, चतुर्थी को धनहानि, अष्टमी को उच्चाटन, नवमी को शस्त्रभय, अमावस्या को राजभय और चतुर्दशी को स्त्रीहानि होती है। महर्षि भृगु के मत में-चतुर्थी, अष्टमी, अमावस्या तिथियाँ, सूर्य, चन्द्र और मंगलवार को गृहारम्भ नहीं करना चाहिए।

गृहारम्भ में नक्षत्र शुद्धि विचार-

चित्राशतभिषक्स्वाती हस्तः पुष्यः पुनर्वसुः।
रोहिणी रेवतीमूल-श्रवणोत्तरफाल्गुनी॥
घनिष्ठा चोत्तराषाढा तथा भाद्रोत्तरान्विता।
अश्विनीमृगशीर्षेद्व अनुराधा तथैव च ॥
वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः ।
समाप्नोति नरो लक्ष्मीमिति प्राह पराशरः ॥बृ.वा.मा.71-73॥

चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्य, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में गृहारम्भ करना शुभ होता है। महर्षि पाराशर के मत में- चित्रा, शतभिषा, स्वाती, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, रेवती, मूल, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, मृगशिरा और अनुराधा- इन नक्षत्रों में वास्तुपूजन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

मतान्तरे गृहारम्भसमयः

हस्तादित्यशशाङ्कपुष्यपवनप्राज्येशमित्रोत्तराश्
चित्राश्विन्श्रवणेषु वृश्चिकघटौ त्यक्त्वा विरिक्ते तिथौ।
शुक्राचार्यशनैश्चरज्ञशशिनो वारेऽनुकूले विद्यौ
सद्भिर्वेश्मनि सूतिकागृहविधिः क्षेमङ्करः कीर्तितः ॥बृ.वा.मा.74॥

हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य, स्वाती, रोहिणी, अनुराधा, तीनों उत्तरा, चित्रा, अश्विनी और श्रवण नक्षत्रों में तथा वृश्चिक एवं कुम्भ लग्नों को रिक्ता (4.9.14) तिथियों को छोड़कर बुध, गुरु, शुक्र, शनि वारों में शुभ चन्द्रमा में गृहारम्भ एवं सूतिका गृह का निर्माण प्रारम्भ करने से गृहपति का कल्याण होता है।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार समय का विचार-

वास्तोः कर्मणि धिष्ण्यवारतिथयोऽश्विन्युत्तराणां त्रिकं
हस्तादित्रयमैत्रतोद्वयमिदं पुष्यो मृगो रोहिणी।
निन्द्यौ भूसुतभास्करौ च शुभदा पूर्णा च नन्दातिथिः

वैधृतिशूलगण्डपरिघव्याघातवज्रा तेषां अपि ॥ बृ.वा.मा.75॥

अश्विनी, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुष्य, मृगशिरा और रोहिणी ये नक्षत्र शुभ हैं। मंगल और रविवार को छोड़कर शेष दिन पूर्णा (5.10.15) और नन्दा (1.6.11) तिथियाँ शुभ हैं। वैधृति, शूल, गण्ड, परिघ, व्याघात और वज्र योग अशुभ होते हैं।

अन्य ग्रन्थ के अनुसार समय का विचार-

विष्कुम्भव्यतिपातकौ च न शुभौ योगाः परे शोभनाः

शस्तं नागववाख्यतैतिलगरं युग्मां तिथिं वर्जयेत्।

मौहूर्त त्वथ विश्वमष्टनवमं पञ्चत्रिरागाद्रिकं

श्रेष्ठं च द्वितयं तुलावृषघटौ युग्मं धनुः कन्यके ॥ बृ.वा.मा.76॥

योगों में विष्कुम्भ और व्यतीपात को छोड़कर शेष शुभ होते हैं, नाग, वव, तैतिल और गर करण उत्तम होते हैं। सम तिथियाँ (2,4,6,8,10,12,14,30) तिथियाँ शुभ नहीं हैं। (2,3,5,6,7,8,9,13) ये मुहूर्त्त शुभ हैं, 2,3,6,7,9,11 लग्न उत्तम हैं।

विश्वकर्मप्रकाश के अनुसार-

शुभग्रह से युक्त और दृष्ट द्विस्वभाव और स्थिरलग्न में वास्तुकर्म शुभ होता है। शुभग्रह बलवान् होकर दशमस्थान हो तो वास्तुकर्म शुभ होता है। अथवा शुभग्रह पञ्चम, नवम हों और चन्द्रमा 1,4,7,10 स्थान में हो तथा पापग्रह तीसरे, छठे, ग्यारहवें स्थान में हो तो गृह शुभ होता है। यदि अष्टम स्थान में पापग्रह हो तो गृह स्वामी की मृत्यु होती है।

रामदैवज्ञ के अनुसार-

भौमार्करिक्तामाद्युने चरो नाज्ञे विपञ्चके ।

व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भखायारिगैः खलैः ॥बृ.वा.मा.79॥

मंगल, रविवार, रिक्ता (4.9.14) अमावस्या, सप्तमी तिथियाँ, चरलग्न, बाण पञ्चक आदि को त्यागकर आठवें, बारहवें से अतिरिक्त शुभगृह हों और तीसरे, छठे, ग्यारहवें भावों में पापग्रह हों तो गृहारम्भ शुभ होता है।

गृहारम्भ समय से गृहायुविचार- यदि लग्न समय में बलवान् बृहस्पति हो तो सौख्य, शुक्र से धान्य, चन्द्रमा से लक्ष्मी, सूर्य से सौख्य आदि चारों फल प्राप्त होते हैं। यदि उपर्युक्त चारों ग्रह नीच अथवा

अस्तङ्गत हों तो अपना पूर्ण फल कदापि नहीं देतें। लग्न में बृहस्पति सप्तम में बुध, षष्ठ में सूर्य, चतुर्थ में शुक्र और तृतीय भाव में शनि हो तो वह शतायु गृह होता है।

जीवः सौख्यमुपाकरोति भृगुजो धान्यं श्रियं चन्द्रमाः

सूर्यो वेश्मपतिश्चतुष्टयमिदं नीचास्तगं दुर्बलम्।

जीवे लग्नमुपागते शशिसुते यामित्रगेऽर्के रिपौ

शुक्रेऽब्धौ सहजे शनौ च शरदां गेहं शतं तिष्ठति।।वा.रा.व. बृ.वा.मा.82।।

इसी प्रकार विश्वकर्मा ने उल्लेख किया है-

गुरुर्लग्ने रविः षष्ठे द्यूने सौम्ये सुखे सिते।

तृतीयस्थेऽर्कपुत्रे यत्र तद् गृहं शतमायुषम्।।(वि.प्र.3.23)

यदि शुक्र लग्न में, बुध दशम में, सूर्य एकादश में तथा गुरु केन्द्र में हो तो इस मुहूर्त्त में गृहारम्भ करने से गृह शतायु होता है यथा-

भृगुलग्नेऽमम्बरे सौम्ये लाभस्थाने च भास्करे।

गुरुः केन्द्रगतो यत्र शतवर्षाणि तिष्ठति।।(वि.प्र.3.23)

इकाई- 7 (वास्तुशास्त्रीय सामान्य मत)

वास्तुशास्त्रियों में विश्वकर्मा एवं मय का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं । भारत में दो प्रकार के निर्माण उपलब्ध हैं, उत्तर शैली और दूसरे दक्षिण शैली के, इन दोनों वास्तु में समान्य भेद है, जिन्हें हम उत्तरी निर्माण कला और दक्षिण निर्माण कला कह सकते हैं। उत्तरीय निर्माण कला के लिए हमें विश्वकर्मा प्रकाश एवं समरांगण सूत्रधार एवं दक्षिण निर्माण शिल्प के लिए मयमत शिल्प एवं मानसार में उल्लेख मिलते हैं। समरांगण सूत्रधार एक वृहद् ग्रन्थ है जिसकी रचना ग्यारहवीं सदी में हुई। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक ग्रन्थ है। राजा भोज द्वारा प्रस्तुत यह ग्रन्थ वास्तुशास्त्र के मुलभूत सिद्धान्तों तथा प्रमाणों से परिपूर्ण है। राजा भोज का शासनकाल हिन्दुओं और मुगलों के शासनकाल का संधि-स्थल था। उस समय राजा भोज खगोल विद्या के प्रकाण्ड विद्वान थे और ज्योतिष के अनुसार ग्रह योग नक्षत्रों की गणना अनुसार भवन निर्माण,वास्तु पूजा,वास्तु प्रतिष्ठा एवं गृह प्रवेश आदि सम्बन्धित अनेकानेक सूत्र उन्होंने दिए हैं । समरांगण सूत्रधार में राजा भोज ने देव-प्रतिमा प्रतिष्ठा, सभा भवन, प्रार्थना भवन आदि के निर्माण के बारे में विस्तृत विवेचना की है। ग्रन्थ में राजा भोज ने उत्तम लक्षणों वाली भूमि का स्पष्ट उल्लेख किया है। वस्तुतः उन्होंने उसी भूमि को निवास योग्य माना है, जो मध्य स्थल पर उठी हुई हो और पूर्व तथा ईशानकोण में झुकी हुई हो। अर्थात भूमि का जल प्लावन ईशान अथवा पूर्व दिशा की ओर होना उत्तम श्रेणी के भूखण्ड का लक्षण कहा गया है और ऐसे भूखंड पर किसी देश , नगर अथवा किसी आवासीय गृह का स्थित होना लक्ष्मीकारक और कीर्ति प्रदान करने होता है।

स्थपति लक्षण, अष्टाङ्ग लक्षण, भूमि परीक्षा, हस्त-लक्षण, श्रयादि निर्णय, वास्तु-त्रयविभाग, नाड्यादिसिरादि विकल्प, मर्म वेध, पुरुषाङ्ग देवता निघण्ट्वादि निर्णय, बलिदान विधि, वास्तुसंस्थान मातृका, शिलान्यास विधि, कोलक-सूत्रपात, नगरादि संज्ञा, पुर निवेश, भवन-निवेश, चतुश्शाल विधान, निम्नोच्चादि का फल, द्वासप्तति त्रिशाल लक्षण, द्विशाल गृह के लक्षण, एकशाल लक्षण, द्वारपीठ, भित्तिमानादि, एवं द्विशाल गृह के लक्षण, एकशाल लक्षण, गृहों का विभाजन, वन प्रवेश गृह, द्रव्यों का प्रमाण तथा चयविधि, अप्रयोज्य व प्रयोज्य द्वार गुण व दोष, द्वार मङ्गल के फल, तोरण भङ्गादि की शान्ति, गृहदोष निरूपण एवं शान्ति कर्म विधि विषयों का वर्णन मिलता है।

सामान्य विषय में वास्तुकर्तु, वास्तुकर्म स्थापत्य, वास्त्वाधार एवं भूमि परीक्षा, देश विभाग, देश भूमि वर्णन, भूमि संग्रह, भूमिपरीक्षा, मृत्तिकापरीक्षा,वास्तु आरम्भे आयादि विचार, इन्द्रध्वज वर्णन, वास्तुपदविन्यास, वास्तुपददेवतावलि, वास्तु स्थापन, शिलान्यास ये सभी विषय सभी वास्तु-कृत्यों में

सामान्य हैं। भवन निर्माण, राजवेश्म-रचना,प्रासाद निर्माण में, प्रतिमा प्रकल्पना व चित्रों का भी वर्णन है।

वास्तुशास्त्रीय व शिल्पशास्त्रीय के लिए समराङ्गण सूत्रधार प्रधानग्रन्थ है। मानसार और मयमत में भी भवनों के प्रतिमान का वर्णन है। लेकिन समराङ्गण सूत्रधार में शयनासन, पुर, दुर्ग, भवन ,प्रासाद , प्रतिमा, चित्र, यन्त्रादि का भी वर्णन है।

8.1. **विश्वकर्मा वास्तु**- राजा भोज ने विश्वकर्मा को श्रेष्ठ शिल्पाचार्य माना है भगवान विश्वकर्मा की शिल्प कला से पृथ्वी-आकाश एवं पाताल लोक की रचना हुई है। द्वापर में लंका के निर्माण का वर्णन, अयोध्या जनकपुरी के वास्तु निर्माण के वर्णन का उल्लेख शास्त्रों में उपलब्ध है। किंवदंती है कि रावण के पुष्पक विमान का निर्माण भी विश्वकर्मा ने ही किया था। त्रिभुवन नायक देवाधिदेव श्रीकृष्ण ने अपनी द्वारकापुरी के निर्माण के लिए स्वयं निर्देश देकर विश्वकर्मा के हाथों द्वारकापुरी के भव्य भवनों का निर्माण कराया। विश्वकर्मा पुराण में वास्तु शिल्प के सम्पूर्ण निर्देशों का वर्णन है। विश्व में इस भूतल पर जितने भी निर्माणक कार्य होते है, उनके रचयिता विश्वकर्मा हैं, अर्थात् विश्व में सम्पादित होने वाले सम्पूर्ण कार्यो के वे ही आदि देव हैं। उनके बिना तो किसी भी प्रकार के आवासादि के निर्माण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ब्रह्मवैवर्त पुराण के 17 वें अध्याय के अनुसार श्रीकृष्ण के निर्देशानुसार विशकर्मा अपने तीन करोड़ शिल्प कला के निपुण वास्तुशिल्पियों से उन्होंने वहाँ नगर निर्माण कार्य आरम्भ किया।
भारतवर्ष का श्रेष्ठ एवं सुन्दर यह नगर पाँच योजन विस्तृत था। चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे ,चार -चार कक्षों से युक्त बीस भवन बनाए। रत्नसार रचित सुरम्य तूलिकाओं, सुवर्ण की मणियों द्वारा निर्मित अत्यंत सुन्दर सोपान लोहसार के बने द्वारों तथा कृत्रिम चित्रों से वृषभान भवन अतीव रमणीय थे।विश्वकर्मा ने अद्भुत भवनों का निर्माण किया था, इसमें कदम्ब आदि के वृक्षों रोपण भी किया गया। इस प्रकार विश्व के प्राचीनतम तकनीकी ग्रन्थों का रचयिता भी विश्वकर्मा को ही माना गया है। इन ग्रंथों में न केवल भवन वास्तु विद्या, रथादि वाहनों के निर्माण, बल्कि विभिन्न रत्नों के प्रभाव व उपयोग आदि का भी विवरण है। देव शिल्पी के विश्वकर्मा प्रकाश को वास्तु तंत्र का अपूर्व ग्रंथ माना जाता है। इसमें अनुपम वास्तु विद्या को गणितीय सूत्रों के आधार पर प्रमाणित किया गया है। ऐसा माना जाता है कि सभी पौराणिक संरचनाएँ, भगवान विश्वकर्मा द्वारा निर्मित हैं। भगवान विश्वाकर्मा के जन्म को देवताओं और राक्षसों के बीच हुए समुद्र मंथन से माना जाता है। पौराणिक युग के अस्त्र और शस्त्र भगवान् विश्वकर्मा द्वारा ही निर्मित हैं। वज्र का निर्माण भी उन्हीं के द्वारा हुआ पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है।

पौराणिक साक्ष्यों के मुताबिक, स्वर्गलोक की इन्द्रपुरी, यमपुरी, वरुणपुरी, कुबेरपुरी, असुरराज रावण की स्वर्ण नगरी लंका, भगवान श्रीकृष्ण की समुद्र नगरी द्वारिका और पांडवों की राजधानी

हस्तिनापुर के निर्माण का श्रेय भी विश्वकर्मा को ही जाता है। पौराणिक कथाओं में इन उत्कृष्ट नगरों के निर्माण के रोचक विवरण मिलते हैं। उड़ीसा का विश्व प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर तो विश्वकर्मा के शिल्प कौशल का अप्रतिम उदाहरण माना जाता है। विष्णु पुराण में उल्लेख है कि जगन्नाथ मंदिर की अनुपम शिल्प रचना से खुश होकर भगवान विष्णु ने उन्हे शिल्पावतार के रूप में सम्मानित किया। महाभारत में पाण्डवों के लिए इंद्रप्रस्थ का निर्माण भी विश्ववकर्मा ने किया था।

इस तरह स्कंद पुराण में उन्हें देवयानों का सृष्टा कहा गया है। स्कंद पुराण में ही एक अन्य स्थल पर उल्लेख है कि वे शिल्प शास्त्र के इतने बड़े मर्मज्ञ थे कि जल पर चल सकने योग्य खड़ाऊँ बनाने की सामर्थ्य रखते थे। माना जाता है कि प्राचीन काल में जितने भी सुप्रसिद्ध नगर और राजधानियाँ थीं, उनके वास्तु शिल्प का सृजन भी विश्वकर्मा ने ही किया था। सतयुग का स्वर्ग लोक, त्रेता युग की लंका, द्वापर की द्वारिका और कलयुग के हस्तिनापुर आदि के रचयिता विश्वकर्मा जी की पूजा अत्यन्त शुभकारी है। सृष्टि के प्रथम सूत्रधार, शिल्पकार और विश्व के पहले तकनीकी ग्रन्थ के रचयिता भगवान विश्वकर्मा ने देवताओं की रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया था। विष्णु को चक्र, शिव को त्रिशूल, इंद्र को वज्र, हनुमान को गदा और कुबेर को पुष्पक विमान विश्वकर्मा ने ही प्रदान किये थे। सीता स्वयंवर में जिस धनुष को श्रीराम ने तोड़ा था, वह भी विश्वकर्मा के हाथों बना था। जिस रथ पर निर्भर रह कर श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन संसार को भस्म करने की शक्ति रखते थे उसके निमार्ता विश्वकर्मा ही थे। पार्वती के विवाह के लिए जो मण्डप और वेदी बनाई गई थी, वह भी विश्वकर्मा ने ही तैयार की थी।

विश्वकर्मा शिल्पशास्त्र के आविष्कारक और सर्वश्रेठ ज्ञाता माने जाते हैं। जिन्होनें देवताओं के सम्पूर्ण विमानों की रचना की और जिनके द्वारा आविष्कार कर शिल्पविद्याओं के आश्रय से सहस्त्रों शिल्पी मनुष्य अपने जीवन निर्वाह करता है। धर्मग्रंथों में विश्वकर्मा को सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का वंशज माना गया है। ब्रह्मा के पुत्र धर्म तथा धर्म के पुत्र वास्तुदेव थें, जिन्हें शिल्प शास्त्र का आदि पुरुष माना जाता है। इन्हीं वास्तुदेव की अंगिरसी नामक पत्नी से विश्वकर्मा का जन्म हुआ। अपने पिता के पदचिह्नों पर चलते हुए विश्वकर्मा भी वास्तुकला के महान आचार्य बने। मनु, मय, त्वष्टा, शिल्पी और देवज्ञ इनके पुत्र हैं। इन पाँचों पुत्रों को वास्तु शिल्प की अलग-अलग विधाओं में विशेषज्ञ माना जाता है। विश्वकर्मा वैदिक देवता के रूप में सर्वमान्य हैं। इनको गृहस्थ आश्रम के लिए आवश्यक सुविधाओं का निर्माता और प्रवर्तक भी कहा गया है। अपने विशिष्ट ज्ञान-विज्ञान के कारण देव शिल्पी विश्वकर्मा मानव समुदाय ही नहीं, वरन देवगणों द्वारा भी पूजित हैं। देवता, नर, असुर, यक्ष और गंधर्व सभी में उनके प्रति सम्मान का भाव है। इनकी गणना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देवों में होती है। मान्यता है कि भगवान विश्वकर्मा के पूजन- अर्चन किये बिना कोई भी तकनीकी कार्य शुभ नहीं माना जाता। इसी कारण विभिन्न कार्यों में

प्रयुक्त होने वाले औजारों, कल-कारखानों और विभिन्न उद्योगों में लगी मशीनों का पूजन विश्वकर्मा जयंती पर किया जाता है। विश्वकर्मा के यथाविधि पूजन और उनके बताये वास्तुशास्त्र के नियमों का अनुपालन कर बनवाये गये मकान और दुकान शुभ फल देने वाले माने जाते हैं। इनमें कोई वास्तु दोष नहीं माना जाता। मान्यता है कि ऐसे भवनों में रहने वाला सुखी और सम्पन्न रहता है और ऐसी दुकानों में कारोबार फलता-फूलता है। इसी कारण बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखंड, कर्नाटक और दिल्ली आदि क्षेत्रों में प्रतिवर्ष भगवान विश्वकर्मा की जयन्ती पर धूमधाम से इनकी पूजा-अर्चना की जाती है। इस अवसर पर विश्वकर्मा समाज के लोग इनकी शोभायात्रा भी निकालते हैं।

अत: विश्वभकर्मा पूजन भगवान विश्वकर्मा को समर्पित एक दिन है। हर वर्ष 17 सितम्बर को विश्वकर्मा जयंती मनायी जाती है। इस दिन का औद्योगिक जगत और भारतीय कलाकारों, मजदूरों, इंजीनियर्स आदि के लिए खास महत्त्व है।

8.2. वराहमिहिर वास्तु- वराहमिहिर एक प्रतिभाशाली भारतीय खगोलशास्त्री, जो 5 वीं शताब्दी ईस्वी में उज्जैन के ज्योतिषी और प्रतिष्ठित गणितज्ञ थे, वह प्रमुख भारतीय ऋषि थे जिन्होंने लगभग 1500 वर्ष पहले मंगल ग्रह पर पानी की उपलब्धता की भविष्यवाणी की थी अंतरिक्ष और ब्रह्मांड के बारे में उनकी बहुमूल्य अंतर्दृष्टि आधुनिक वैज्ञानिकों का अध्ययन बन गई है। उन्होंने पहचाना कि चंद्रमा और अन्य ग्रह सूर्य के प्रकाश के कारण चमक रहे हैं। उनके निकटतम समकालीन आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त की तुलना वराहमिहिर की स्वीकृति से नहीं की जा सकती। उनकी ज्योतिषीय प्रतिभा से प्रचारित सम्राट विक्रमादित्य और चंद्रगुप्त के नौ रत्नों में से एक थे। सूक्ष्म अवलोकनों ने विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में सबसे प्रतिष्ठित सम्मान प्रदान किया। वास्तुविद्याध्याय में वास्तुदेवोत्पत्ति, विविध गृह-प्रमाण, शल्य आदि के शुभाशुभफल का विचार, दकार्गल में भूमिस्थ जल के ज्ञान की विधियों का वर्णन, वृक्षायुर्वेद में वृक्षों की चिकित्सा का वर्णन, प्रासादलक्षण, वज्रलेप एवं प्रतिमालक्षण में क्रमशः नामानुरूप वास्तुशास्त्रीय विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

8.3. मयवास्तु- 'मयमत' ग्रन्थ में वास्तु के स्थान पर 'वस्तु' पद का प्रयोग किया है। मय के अनुसार वस्तु ही मूल है। इनके अनुसार वस्तु से उत्पन्न पदार्थ 'वास्तु' है। इन्होंने पृथिवी को प्रथम वस्तु माना है। इसके अतिरिक्त प्रासाद, यान एवं शयन भी वास्तु की श्रेणी में परिगणित है।

अमर्त्याश्चैव मर्त्याश्च यत्र यत्र वसन्ति हि।
तद्वस्त्विति मतं तज्ज्ञैस्तद्भेदश्च वदाम्यहम्।।
भूप्रासादयानानि शयनं च चतुर्विधम्।
भूरेव मुख्यवस्तु स्यात्तत्र जातानि यानि हि।।(मयमत-2.1-2)

अतः उन्होंने वास्तुशास्त्र के स्थान पर सभी जगह 'वस्तुशास्त्र' का प्रयोग किया है; जबकि अन्य ग्रन्थकारों ने 'वास्तुशास्त्र' पद का प्रयोग किया है।

मय नें नींव में गर्भन्यास हेतु प्रत्येक स्थान के लिए भवन के गर्भ में रखे जाने वाले पदार्थों एवं सम्पूर्ण भवन के गर्भ में रखे जाने वाले पदार्थों (गर्भन्यास) का स्वतन्त्र रूप से प्रकरण के अनुसार नियोजन किया गया है।

भूमिप्रासादयानानि शयनं च चतुर्विधम् ।
भूरेव मुख्यवस्तु स्यात्तत्र जातानि यानि हि ॥2॥

वास्तु चार प्रकार के होते हैं-भूमि, प्रासाद (देवालय), यान एवं शयन। इनमें प्रधान वास्तु भूमि ही है; क्योंकि शेष इसी से उत्पन्न होते हैं।

भूमिप्रासादयानानि शयनं च चतुर्विधम् ।
भूरेव मुख्यवस्तु स्यात्तत्र जातानि यानि हि ॥2॥

मयदानव द्वारा रचित 'मयमत' दक्षिण भारतीय वास्तु-परम्परा अथवा द्रविड रीति का मानक ग्रन्थ है। 'मयमत' ग्रन्थ में वास्तु के स्थान पर 'वस्तु' पद का प्रयोग किया तथा 'वास्तुशास्त्र' के स्थान पर सभी जगह 'वास्तुशास्त्र' का प्रयोग किया है। मय के अनुसार वस्तु ही मूल है तथा वस्तु से उत्पन्न पदार्थ 'वास्तु' है। इन्होंने पृथिवी को प्रथम वस्तु माना है। इसके अतिरिक्त प्रासाद, यान एवं शयन भी वास्तु की श्रेणी में परिगणित हैं।

इनका मयमत ग्रन्थ 36 अध्यायों में विभक्त है। इसका प्रथम अध्याय संग्रहाध्याय, दूसरा वस्तुप्रकार, तीसरा भूपरीक्षा, चौथा भूपरिग्रह, पाचवाँ मानोपकरण, छठा दिक्परिच्छेद, सातवाँ पदविन्यास, आठवाँ बलिकर्म, नवाँ ग्रामविन्यास, दसवाँ नगरविधान, ग्यारहवाँ भूलम्बविधान, बारहवाँ गर्भविन्यास, तेरहवाँ उपपीठ-विधान, चौदहवाँ अधिष्ठानविधान, पन्द्रहवाँ पादप्रमाण-द्रव्यपरिग्रहविधान, अट्ठाहरवाँ प्रासादोर्ध्ववर्ग, उन्तीसवाँ एक भूमि विधान तथा बीसवाँ द्विभूमिविधान है। इसके पश्चात् क्रमशः त्रिभूमिविधान, चतुर्भूम्यादि बहुभूमिविधान, प्राकारपरिवार-विधान, गोपुरविधान, मण्डपसभाविधान, शालाविधान, चतुर्गृहविधान, गृहप्रवेश, राजवेश्मविधान, द्वारविधान, यानाधिकार, शयनासनाधिकार, लिङ्गलक्षण, पीठ-लक्षण, अनुकर्म विधान तथा प्रतिमा-लक्षण संज्ञक अध्याय हैं। ग्रन्थ के अन्त में कूपारम्भ संज्ञक परिशिष्ट प्राप्त होता है।

8.4. सूत्रधार मण्डन वास्तु- महाराणा कुंभा के प्रधान शिल्पी तथा मूर्तिशास्त्री थे। वह वास्तुशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान तथा शास्त्रप्रणेता थे। शिल्पकार मंडन मिस्त्री अर्थात् कुमावत शिल्पकार और सुथार

समाज के प्रमुख व्यक्ति थे। इनकी कृतियों में मत्स्यपुराण से लेकर अपराजितपृच्छा के संकलनों का प्रभाव दिखाई देता है।

शिल्पकार मंडन ने वास्तुशास्त्र का प्रयोगात्मक अनुभव कुंभलगढ़ का दुर्ग, जिसका निर्माण उन्होंने 1458 ई0 के लगभग किया, यह उनकी वास्तुशास्त्रीय प्रतिभा का साक्षी है, जो कुमावत शिल्पियों का एक बेहतरीन नमूना है। यहाँ से मिली मातृकाओं और चतुर्विंशति वर्ग के विष्णु की कुछ मूर्तियों का निर्माण भी संभवतः इन्हीं के द्वारा हुआ।

इन्होंने देवमूर्ति प्रकरण, प्रासादमंडन, राजवल्लभ मंडन, रूपमंडन, वास्तुमंडन, कोदंड मण्डन, वास्तुसार, वैद्य मण्डन, शाकुन मण्डन, वास्तुशास्त्रम् आदि ग्रन्थों की रचना की थी।

सूत्रधार मंडन कृत राजवल्लभ वास्तुशास्त्र में कुंभा के काल में दुर्गों की सुरक्षा के लिए तैनात किए जाने वाले आयुधों, यंत्रों का वर्णन है यथा आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, जलयंत्र, नालिका और उनके विभिन्न अंगों के नामों का उल्लेख किया है - फणिनी, मर्कटी, बंधिका, पंजरमत, कुंडल, ज्योतिकया, ढिंकुली, वलणी, गौरीयंत्र आदि से स्पष्ट होता है कि उन्होंने वास्तुशास्त्र- जलाशय, कूप, कीर्तिस्तंभ, पुर, आदि के निर्माण के साथ-साथ सुरक्षा के लिए शस्त्र एवं बारूद का भी निर्माण किया था।

8.5. भोज वास्तु- शिल्पशास्त्र के महान विद्वान महाराज भोजराज थे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध तथा वस्तुशास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थ "समरांगण सूत्राधार "में विश्वकर्मा को शिल्पाचार्य के रूप में उल्लिखित किया है तथा वास्तुशास्त्र के अनेकानेक मुख्य निर्देशों का प्रतिपालन अपने ग्रन्थ समरांगण में किया है। वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित बहुमूल्य ग्रन्थ निःसंदेह समरांगण सूत्रधार ही है । समरांगण का अर्थ है – एक भवन , एक गृह, एक इमारत जिसके निर्माण में सबके सब लक्षणों का पूर्णरूपेण विवेचन कर जिसका निर्माण किया गया हो तथा जिसके निर्माण कार्य में कोई त्रुटि अथवा कोई निर्माण दोष नहीं हो ,जो अनेक कक्षों वाला हो ,ऐसा समरांगण सूत्रधार नामक ग्रन्थ भवन-निर्माण वास्तु शिल्पशास्त्र के अनेकानेक सूत्रों से परिपूर्ण है तथा यही ग्रन्थ समरांगण सूत्रधार वास्तु भवन निर्माण कला के सूत्रों का परिचायक है। किन्तु समराङ्गणसूत्रधार (13) एवं अपराजितपृच्छा (57) में वास्तुपदों के भेद मयमत से भित्र हैं। समराङ्गणसूत्रधार में तीन प्रधान वास्तुभेद माने गये हैं- इक्यासी पद, एक सौ पद एवं चौसठ पद वास्तु-

एकाशीतिपदो यः स्यात्तथा शतपदश्च यः।

चतुःषष्टिपदो यच्च वास्तुरत्नः त्रिधोदितः ।। (समराङ्गणसूत्रधार-13.1)

अपराजितपृच्छा (57) में वास्तुपद के ग्यारह भेद वर्णित हैं-स्वस्तिक, पुष्पक, नन्द, षोडशाक्ष, कुलतिलक, सुभद्र, मरीचिगण, भद्रक, कामद, भद्र एवं सर्वतोभद्र-विश्वकर्मा देवों के स्थपति एवं मय दानव शिल्प के प्रवर्तक आचार्य के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं।

स्थापत्य कला से सम्बन्धित तीन विभाग प्रसिद्ध हैं। वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र एवं चित्रशास्त्र। वास्तुशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्यों ने शिल्पशास्त्र को वास्तुशास्त्र का ही पर्याय कहा है। धाराधिपति भोजराज के समराङ्गणसूत्रधार के अवलोकन से ज्ञात होता है कि चित्र और शिल्प वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत ही समाहित हैं। समराङ्गणसूत्रधार के अनुसार वास्तुशास्त्र-जनभवन, राजभवन और देवभवन तथा शिल्पशास्त्र-प्रतिमा, यन्त्रनिर्माण, चित्रशास्त्र-सज्जा एवं आलेख से सम्बन्धित विभागों के नाम हैं। इन सभी के एकत्व का नाम ही भारतीय वास्तुशास्त्र अथवा भारतीय स्थापत्य कला है।

प्राप्त वास्तुशास्त्रीय स्वतन्त्र ग्रन्थों में से समराङ्गणसूत्रधार और शिल्परत्न सम्पूर्ण वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ हैं क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों में भवन, प्रतिमा, यन्त्र एवं चित्रादि वास्तुशास्त्रीय सभी विषयों का समावेश मिलता है। समराङ्गणसूत्रधार के समकालिक कृति अपराजितपृच्छा भी समराङ्गणसूत्रधार का ही समर्थन करती है तथा मानसार और मयमत में भी भवनों (विमानों) एवं प्रतिमाओं का भी वर्णन मिलता है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. भारतीय वास्तुशास्त्र, डॉ. रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी श्रीमध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति 11 रविन्द्रनाथ टैगोर मार्ग इन्दौर
2. बृहद्वास्तुमाला, ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
3. वास्तुशास्त्रसार. प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली
4. गृहवास्तु शास्त्रीय विधान, देशबन्धु शास्त्री, विद्यानिधि प्रकाशन नई दिल्ली
5. भारतीय स्थापत्य एवं कला प्रो. उदयनारायण मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी
6. भारतीय वास्तुशास्त्र का इतिहास – डॉ. विद्याधर ईस्टर्न बक्स नई दिल्ली
7. मयमत टीकाकार शैलजा पाण्डे चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला वाराणसी
8. मनुष्यालयचन्द्रिका, शैलजा पाण्डे, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वास्तुमण्डन, पं, श्रीकृष्ण जुगुनु, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
10. शिल्परत्नम्,(1-4) पं, श्रीकृष्ण जुगुनु, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
11. वास्तुशास्त्रविमर्श, डॉ. चन्द्रमोहन झा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
12. वास्तुशास्त्रसार, स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
13. वास्तुमाणिक्य रत्नाकर पं. रामचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
14. समरांगणसूत्रधार श्री कृष्ण जुगुनु चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला वाराणसी
15. अपराजित पृच्छा श्री कृष्ण जुगुनु परिमल संस्कृत ग्रन्थमाला दिल्ली
16. बृहत्संहिता, डॉ. अच्युतानन्द झा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
17. मुहूर्तचिन्तामणी रामदैवज्ञ,(पियूषधारा) विघ्नेश्वरी प्रसाद, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

द्वारा सञ्चालित एवं प्रस्तावित राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - ४५६००६ (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in